बज उठी पायलिया

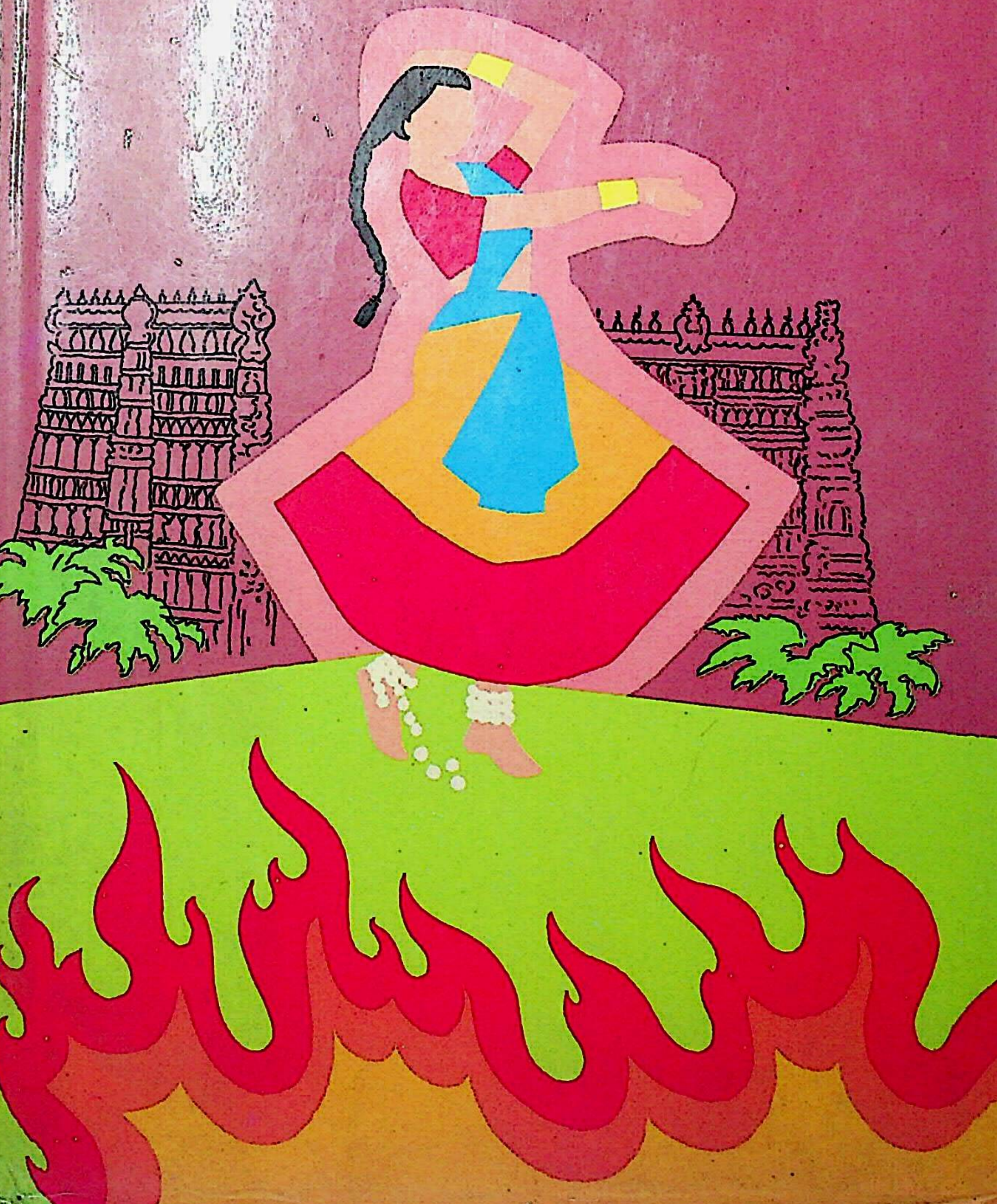

मूल्य : पचास रुपया

बज उठी पायलिया

(शिलप्पदिकारम्)

इळंगोवडिहळ् रचित तमिल महाकाव्य का औपन्यासिक रूपान्तर

रूपान्तरकार

रा० वीलिनाथन्

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

SHILPPADIKARAM

by

R. Veelinathan

1995

ISBN 81-7124-146-8

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रानिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०, चौक, वाराणसी

श्री मुमुक्षु भवन
वेद वेदाङ्ग महाविद्यालय
अस्सी, वाराणसी

शिलप्पदिकारम्

(बज उठी पायलिया)

'शिलप्पदिकारम्' तमिल का प्रथम महाकाव्य है, इसके रचयिता हैं इळंगोवडिहळ् । तमिल 'शिलंबु' का अर्थ है 'नूपुर' । इस महाकाव्य की सम्पूर्ण कथा नूपुर के चारों ओर घूमती है, अतः इसे 'शिलप्पदिकारम्' (नूपुर-कथा) कहा गया है । इस महाकाव्य के नायक-नायिका हैं कोवलन् और कण्णकि । कुछ विद्वान कोवलन्-कण्णकि की कथा को तत्कालीन समाज में प्रचलित लोक-कथाओं से गृहीत मानते हैं तो कुछ उसे कवि-कल्पना-प्रसूत मानते हैं । यह महाकाव्य 'पुहारक्कांडम्', 'मदुरैक्कांडम्', 'वंजिक्कांडम्' नाम तीन कांडों में विभाजित है जिनमें क्रमशः चोल, पांड्य और चेर राज्यों का वर्णन है । इसमें कवि ने तत्कालीन तमिल समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ समाज में प्रचलित नृत्यों, व्यवसायों आदि का परिचय भी दिया है । नृत्य एवं संगीत की चर्चा करते समय कवि ने रंगमंच और राग-रागनियों का सूक्ष्म विवेचन किया है । इस महाकाव्य के विभिन्न कांडों में क्रमशः श्रृंगार, करुण और वीर रस की अभिव्यंजना है । तमिल विद्वानों द्वारा मान्य साहित्य के तीन अंग 'इयल' (काव्य), 'इशै' (संगीत) और 'नाडहम्' (नाटक-नृत्य) इस महाकाव्य में प्राप्त हो जाते हैं । संघ-साहित्य में उल्लिखित पाँच भू-भागों का वर्णन भी इस महाकाव्य में मिल जाता है । संघकाल में प्रगीत-काव्यों की प्रचुरता रही । परवर्ती काल में वर्णनात्मक काव्य लिखे जाने लगे । 'शिलप्पदिकारम्' मूलतः वर्णनात्मक काव्य है परन्तु इसके कुछ अंश प्रगीत-काव्य के समान प्रतीत होते हैं । इस महाकाव्य की भाषा अत्यन्त सरस, सरल और परिष्कृत है । शैली प्रवाहमयी है । कहीं-कहीं लोकगीतों की शैली का प्रयोग किया है ।

शिलप्पदिकारम् पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं । तमिल एवं तमिलेत्तर विद्वानों ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है । यह महाकाव्य अंग्रेजी, फ्रेंच और बंगला में अनूदित हो चुका है ।

आमुख

भाषा विज्ञान के अनुसार संस्कृत आर्य भारतीय यूरोपीय कुल की है और तमिल द्रविड़ कुल की ।

भारत के उत्तर में बोली जाने वाली अधिकांश भाषाओं की जननी मानी जाती है संस्कृत और दक्षिण में बोली जाने वाली भाषाओं की तमिल । पर सभी भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव पड़ा है । यह क्यों ?

इस 'क्यों' का उत्तर भाषा विज्ञान नहीं दे पाता है । पर भारत के इतिहास-पुराण स्पष्ट उत्तर दे पाते हैं और गुत्थी भी सुलझा पाते हैं ।

वाणी यानी सरस्वती भगवान् शिवशंकर की सगी बहिन मानी जाती हैं । जब भगवान् शिवजी का विवाह देवीपार्वती से सम्पन्न होने वाला था, तब पृथ्वी के समस्त प्राणी, उस महोत्सव को देखने के लिए लालायित हो उठे और कैलाश पर्वत पर आ जुटे ।

भार वहन न कर पाने से पृथ्वी डगमगा गयी । उत्तर की भूमि नीचे धँसने और दक्षिण की हल्की होकर ऊपर उठने लगी । अतः भगवान् शिवजी ने महर्षि अगस्त्य को बुलाकर उनसे अनुरोध किया कि दक्षिण जाकर पृथ्वी का सन्तुलन बनाये रखो ।

तमिल की मान्यता है कि शिवजी दक्षिण के अधिदेवता हैं, यद्यपि वे सर्वत्र विराजमान हैं । 'तेन्नाडुडैय शिवने पोट्रि' यह सूक्ति इसका प्रमाण है ।

भारत की एकता को प्रमाणित करने के लिए वे उत्तर की कैलाशगिरि पर दक्षिण की ओर मुख करके बैठे हैं । इसलिए दक्षिणामूर्ति कहलाते हैं ।

अगस्त्य मुनि में अपनी शिवशक्ति को परिप्लावित पा कर उन्होंने यह विधान किया और एक ही समय में अगस्त्य को तमिल और पाणिनी को संस्कृत प्रदान कर विदा किया ।

इस प्रकार शिव प्रसूत ये दोनों भाषाएँ सगी जुड़वा बहनें हुईं और एक दूसरी से प्रभावित हुईं । साहित्य जगत में इन दोनों का एक दूसरी का पूरक साबित होने और फूलन-फलने का यही रहस्य है ।

इस बात की पुष्टि करने के लिए एक और प्रमाण यह है कि इन दोनों भाषाओं के साथ 'देव' और 'दैव' शब्द जुड़े हुए हैं । संस्कृत देव भाषा कहलाती है और तमिल दैव तमिल ।

अगस्त्य मुनि का मन रखने के लिए अपने उद्वाह-महोत्सव की झाँकी दक्षिण की मदुरै नगरी में शिवजी दिखाते हैं, सो अलग ।

हमारे देश में मानवों का केशादि पादांत वर्णन और देवी-देवताओं का पादादि केशांत वर्णन प्रचलित है । वाणी देवी मानी जाती हैं और सरस्वती के रूप में पूजी जाती हैं ।

तमिल भाषा के प्राचीन सारस्वत-पुत्रों ने अपनी आराध्य वाणी को रत्नजड़ित आभूषणों से अलंकृत किया है, जो तमिल में पाँच महाकाव्य नाम से प्रसिद्ध हैं । शिलप्पदिकारम्-नूपुर-गाथा पायलिया-बैंजनी है तो मणिमेखलै कटि प्रदेश का भूषण है । वलैयापति करों का कंकण है तो कुंडल केशी कर्णफूल है । जीवक चिंतामणि तो सिर-मौर है ।

पंचाभरण भूषिता तमिल देवी की एक झलक मात्र लेकर अब हम पायजेब पर नजर टिकाएँ—शिलप्पदिकारम् पर । नूपुर-गाथा के कृतिकार हैं इळंगोवडिहळ् ।

ढाई हजार वर्ष पहले की बात है । चेर साम्राज्य के राजमहल में जो बालक खेल रहे थे उनमें बड़ा राजकुमार था, गद्दी का अधिकारी । छोटा युवराज था । तमिल में युवराज को इलंगो कहते हैं ।

उस समय राजा के दर्शन करने एक निमित्तक-ज्योतिषी आये । दोनों बालकों का अंग लक्षण देखकर वे बोले, "छोटा चक्रवर्ती सम्राट बनेगा ।"

इलंगो झट से बोला, "सो कैसे ? बड़े के रहते छोटे का राजतिलक ? राम के रहते भरत का ? यह कभी नहीं हो सकता ।"

"होनी होकर रहेगी । ज्योतिष-शास्त्र झूठा नहीं हो सकता ।"

"छोटा मुँह बड़ी बात न समझें तो मैं झुठला कर दिखाऊँगा ।" बालक की बात वय के परे की बात थी ।

"कैसे ?"

"मैं संन्यास ले लूँगा ।"

बालक ने जो कहा, सो करके दिखाया । बड़ा भाई सिंहासन पर बैठा और चेरन् चेंकुटुवन नाम से विख्यात हुआ ।

संन्यास लेकर इलंगो ने चेर, चोल, पांडिय राज्यों की चप्पा चप्पा भूमि अपने पैरों नापी और शिलप्पदिकारम् काव्य की रचना की । इस तरह कवि सम्राट हो गये ।

भू सम्राट से बढ़ कर कवि सम्राट होने से वे ज्योतिषी की भविष्यवाणी झुठला नहीं पाये ।

प्राचीन काल में अधिकांश महाकाव्यों के प्रधान कथा-नायक राजे-महाराजे और कथा-नायिकाएँ रानी-महारानी हुआ करती थीं । पर इळंगोवडिहळ् का नायक जन-सामान्य में से था । कोवलन् वणिक पुत्र था, कण्णकि वणिक पुत्री थी । माधवी वारांगना होने पर भी खलनायिका नहीं, सहनायिका थी । कथा विस्तार तो चोल, पांडिय, चेर साम्राज्यों को एक सूत्र में बाँधने वाला था ।

मूल कथा का सार संक्षेप में यों है :—

चोल देश की राजधानी कावेरी पूंपट्टिनम् में मानएयकन (महानायकन) नाम का एक धनी वणिक था । वह बड़ा दानी भी था । समुद्री व्यापार में उसका बड़ा नाम व यश था । उसके इकलौती बेटी थी, कण्णकि । वह अत्यन्त सुन्दर और सुशील थी ।

उसी नगर में माशात्तुवान् (महासत्व) नाम का एक दूसरा वणिक था, जो अपने ही देश में नामी-गिरामी व्यापारी था । उसके बेटे का नाम था कोवलन् । वह रूपवान और गुणवान था ।

कुल मर्यादा के अनुकूल कोवलन्-कण्णकि का विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ और पति-पत्नी दोनों का दाम्पत्य जीवन सुख-चैन से बीत रहा था कि.........कोवलन् के जीवन में माधवी आयी । जैसे मनु के जीवन में इला और याज्ञवल्क्य के जीवन में मैत्रेयी ।

माधवी भरतनाट्यम् और संगीत में बड़ी निपुण थी और रूप-लावण्य में अद्वितीय । उसके प्रेम में पड़कर कोवलन् अपना घर-बार भूल गया । यहाँ

तक कि पत्नी को भी भूल गया और माधवी ही के घर में रहने लगा । व्यापार में ध्यान न देने से उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी । कण्णकि के जेवर-जवाहरात भी शेष न रहे ।

इस बीच इन्द्रोत्सव का दिन आया । यह एक प्रकार से चोल-देश का राष्ट्रोत्सव था । प्रति वर्ष चैत्र-पूर्णिमा के दिन मनाया जाता था । आज भी चैत्र-पूर्णिमा का अपना अलग महत्व होता है ।

यह त्यौहार कावेरी पूंपट्टिनम् के समुद्र तट पर बड़ी चहल-पहल से मनाया जाता था । ललित-कलाओं का खूब प्रदर्शन होता था ।

कोवलन् और माधवी इस प्रमोद-उत्सव में भाग लेने गये । माधवी और कोवलन् ने बीन बजाते हुए स्वांतः सुखाय बारी-बारी से गीत गाया ।

माधवी के एक प्रेम गीत में कोवलन् को ऐसा लगा कि वह किसी दूसरे से प्रेम करती है । फिर क्या ? वहम् का भूत उस पर ऐसा सवार हुआ कि बिना उसे अपने मन की कहे, उससे नाता तोड़ कर अपने घर चल पड़ा ।

सती साध्वी कण्णकि ने पति का मन रखने के विचार से अपना नूपुर का जोड़ा देकर सांत्वना दी और माधवी के पास भेजने का प्रयत्न किया ।

कोवलन् अपनी पत्नी की पति-भक्ति और सहनशीलता देखकर मन ही मन पछताया और दूसरे शहर में जाकर नये सिरे से जीवन सुधारने का संकल्प लिया ।

कण्णकि को लेकर पांडिय राजधानी मदुरै की ओर पैदल ही चल पड़ा ।

उस समय पांडिय राज नेडुंचेलियन का राज चलता था । अपने न्याय के लिए वह तीनों राज्यों में विख्यात था ।

कोवलन् मदुरै नगरी में जाकर कण्णकि का एक नूपुर बेचने के ख्याल से बाज़ार गया । वहाँ शाही सुनार से भेंट हुई । नूपुर बेचने में उसकी सहायता माँगी । वह सुनार तो ऐसा दगाबाज़ था कि पांडिय रानी का ही एक नूपुर उसने चुरा लिया था । कोवलन् को नूपुर के साथ देखकर अपने बचाव के लिए चोरी का आरोप कोवलन् पर लगाया और उसे राजा के दरबार में पेश किया । कोवलन् को रंगे हाथों पकड़ा जान कर राजा ने नगर रक्षक को तुरन्त उसका सिर काटने का आदेश दे दिया ।

कण्णकि ने यह हृदय विदारक बात सुनी तो उसके शोक और क्रोध की सीमा नहीं रही । वह देवी चंडी के माफिक अपना दूसरा नूपुर लेकर राजदरबार में पहुँची और गरजकर बोली, "मेरा पति निर्दोष है । उसे मारना कहाँ का न्याय है ?"

पांडिय ने कहा, "वह तो दोषी था । रंगे हाथों पकड़ा गया । दोषी को उचित दण्ड देना ही राज-धर्म है ।"

"मेरा पति मेरा नूपुर बेचने आया था । सबूत चाहिए तो देख लीजिए । मेरे नूपुर में माणिक-पत्थर भरे हैं ।" कण्णकि हाथ का नूपुर दिखाते हुए बोली ।

"मेरी रानी के नूपुर में तो मोती भरे हैं, न्यायी राजा झूठ नहीं बोला और तुरन्त कोवलन् के हाथ से लिये हुए नूपुर को मँगवाया ।"

कण्णकि ने झट से वह नूपुर उठा कर भूमि पर ऐसा पटका कि उससे माणिक-पत्थर बिखरने लगे ।

देखकर राजा का दिल धक् से रह गया । वह सिंहासन से गिर पड़ा । फिर उठा ही नहीं । उसी क्षण रानी के भी प्राण पखेरू उड़ गये ।

कण्णकि की क्रोधाग्नि तब भी शांत नहीं हुई, मदुरै नगरी को जलाकर ही छोड़ा ।

शोक संतप्त कण्णकि मदुरै नगरी छोड़ कर पश्चिम की ओर यानी चेर राज्य की ओर चल पड़ी । चौदहवें दिन वह 'लाल पहाड़' में पहुँची । उस समय आश्चर्य की एक बात यह हुई कि कोवलन् एक दैवी विमान पर वहाँ आया और कण्णकि को लेकर अन्तर्धान हो गया । हाँ, दोनों एकाकार हो गये ।

वहाँ के गिरिजनों के मुख से आँखों देखा यह वर्णन सुना तो चेर सम्राट चेंकुड्डवन जो इळंगोवडिहळ् का बड़ा भाई था, बड़ा प्रभावित हुआ और कण्णकि के लिए मन्दिर बनवाने का संकल्प किया । इस वास्ते उत्तर के कनक और विजय पर विजय पायी और उनका मन जीत कर उत्तर के पहाड़ से प्रस्तर मँगवाया । कण्णकि की सुन्दर प्रतिमा बनवाकर बड़ी धूम-धाम से प्रतिष्ठापित भी किया । इस समारोह में उत्तर के कनक, विजय, मालव नरेश, लंका का राजा गजबाहु आदि उपस्थित हुए थे ।

चोल, पांडिय, चेर राज्यों में फैली यह नूपुर-गाथा तीन कांडों में बँटी हैं । वे कांड उन्हीं राज्यों के सांकेतिक नाम से पुहार, मदुरै और वंचि नाम से प्रख्यात हैं ।

सच पूछा जाय तो इस काव्य की कथावस्तु पर मेरी रुचि बढ़ाने वाले थे पंडित अमृतलाल नागर । उनका साहचर्य सन् १९४६ में हुआ । श्रीमती एम० एस० शुभलक्ष्मी की 'भक्त मीरा' फिल्म के हिन्दीकरण के अवसर पर मैं उनके साथ रहा, साथी रहा, सहयोगी रहा । वे मुझे अपना पुत्रवत् मानते थे और मेरे हिन्दी लेखन को बढ़ावा और प्रोत्साहन देते थे । यही नहीं, अपने 'सुहाग के नूपुर' में एक कथा-पात्र के रूप में महाश्रेष्ठी वीलिनाथन् नाम से मेरा नाम जीवंत भी किया है ।

उनके साथ चर्चा करते हुए मेरे मन में भी आया कि मैं भी अपने ढंग से इसी विषय पर लघु उपन्यास क्यों न लिखूँ । उसी का नतीजा है यह 'बज उठी पायलिया' ।

एक तरह से कहा जाय तो इसे रामायण-महाभारत का यश प्राप्त है । राम वनवास, पांडव वनवास भुगत कर अब वह प्रकाश में आ रहा है ।

सुहृदवर श्री ठाकुरप्रसाद सिंह से लखनऊ में पहली बार जब मुलाकात हुई तो वाराणसी के 'विश्वविद्यालय प्रकाशन' के संचालक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी से उन्होंने मेरा परिचय कराया । श्री मोदीजी की मिलनसारी, सौहार्द और सौजन्य से यह गुल खिला है । हाँ, यह ग्रन्थ-पुष्प प्रकाश में आ रहा है । उसे रसिक पाठकों और अपने जीवन में आये हुए साहित्यिक मनीषियों को समर्पण करते हुए मैं हार्दिक आनन्द अनुभव कर रहा हूँ ।

पर हाँ, महाकवि कालिदास के शब्दों में "आपरितोषात् न साधु मन्ये मम प्रयोग विज्ञानम् ।"

मद्रास - ३५

रा० वीलिनाथन्

वळैवळर् तरु तुरैये मणम्विरि तरु पोऴिले,
तळैयविळ् नरु मलरे तनियवळ् तिरियिडमे,
मुळैवळर् इळनकैये मळुमदि पुरै मुहमे
इळैयवळू इणैमुलैये येनै इडर् चेढदवैये ।

शंखों से भरा वह समुद्र-तट, वह रेतीली वाटिका, उन्मुक्त सौरभ फैलाने वाले वे फूल और वह एकांत-स्थली, जहाँ वह सुंदरी विचरण कर रही थी, उसकी मल्लिका की पंक्ति-सी मुस्कान, पूर्णचंद्र-सा समुज्ज्वल मुख और उस कृशांगी का सुस्वस्थ यौवन-मेरे मुग्ध हृदय में कचोट के संतप्त प्रहर जगा जाते हैं । उसकी स्मृति के बाण मेरे मर्म को बींधकर जीवन को विरह की सजल वाटिका बना जाते हैं ।

नेर्न्दनङ् कादलर् नेमि नेडुंदिण्डेर् ऊर्न्द वऴिशिदैय ऊहिन्ड्र वोदमे
पून्तण् पोऴिले पुणर्न्दाडु मन्नमे ईर्न्दण् तुरैये इदु तहादेन्नीरे !

हे सरिता की बाढ़ ! तुमने उस तटमार्ग को डुबाकर विनष्ट कर दिया ? उस पर तो मेरा प्रेमी मुझसे मिलने आया करता था ! क्या तुम्हें यह सह्य नहीं था कि मैं कम-से-कम अपने जीवनधारा के रथमार्ग को देखकर ही इस संताप-विदग्ध मन को किंचित् शांत कर लिया करूँ ! हे प्रलयवाहिनी बाढ़ ! हे सुरभिकोष नंदनवन ! मुग्ध विचरने वाले हे हंसयुगल ! हे छाँह-भरे शांत-शीतल नदीतीर ! तुम सब मेरे प्राणेश्वर के पास जाकर कहना कि निष्ठुर ! विरहतप्ता को इस प्रकार अकेली छोड़कर चले जाना उचित नहीं है।

●

बज उठी पायलिया

कावेरी !

कुर्ग पर्वत की पुत्री है वह ।

जनम जनम के साथी की पुकार सुन पड़ी, तो वह अपने को रोक न सकी । चल पड़ी, गृह-पुलिन लाँघ कर ।

उसका प्रियतम सुदूर दक्षिण में खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था । कावेरी को वह दूरी दूरी न लगी और वह पूम्पट्टिनम् को चल पड़ी । रास्ते में न जाने कितनी कंटक-बाधायें उतार-चढ़ाव थे । उन सबकी उसे परवाह न थी । चाल में मस्ती और मन में खुशी लिये वह अपने प्रियतम समुद्र-राज से भेंट करने रास्ता तय करने लगी । उसकी मस्ती से वातावरण महक उठा और खुशी से चहक उठा । जिधर से वह गुजरी, उधर की पृथ्वी शस्य-श्यामला हो गयी, धन-धान्य से समृद्ध हो गयी । क्यों न हो, वह तो अपने प्रियतम से संगम करने जा रही थी ।

पूम्पट्टिनम् के संगम-स्थल के निकट आते-आते, कावेरी के प्रवाह में पहले का उतावलापन नहीं रहा क्यों कि उसे लज्जा ने घेर लिया था । फिर भी उसका तन-मन प्रफुल्लित था ।

शाम की समुद्री हवा खाने और समुद्रराज के कावेरी का संगम देखने के लिए कितने युगल आ जुटे थे । उन सबके सामने खुल्लम-खुल्ला अपने प्रेमी के बाहु पाश में क़ोई बँधे तो कैसे बँधे ?

पर समुद्रराज इतना निर्लज्ज निकला कि अपनी प्रेयसी को देखते ही अपना आपा खो बैठा और 'हो-हो' करके हल्ला मचाने लगा ।

'कावेरी-कावेरी' ।

समुद्रराज ने सिर्फ ऊँचे स्वर में पुकारा ही नहीं, बल्कि अपने लहरिल-हाथ बढ़ा कर कावेरी को अपने बाहुओं में कसने को आगे बढ़ भी गया ।

नर और नारी के प्रेम में कितना अन्तर है । नर लजाता नहीं, नारी लजा जाती है । कावेरी का मुँह लज्जा से झुक गया, आँखों में भँवरें पड़ गयीं और मन की गुदगुदी बुलबुलों के रूप में परिणत हो गयी । समुद्रराज ठहाका मार कर हँस पड़ा और कावेरी को बरबस अपनी ओर करके ही दम लिया ।

'हा, हा, हा' ।

किनारे पर नाव की ओट लिये बैठी एक युवा-जोड़ी ने लगभग यही दृश्य उपस्थित कर किलकारियाँ भरीं । कौन जाने, कितने प्रेमीजन इस अनुपम दृश्य से प्रेरणा पा कर अद्वैतावस्था को पहुँचे थे ।

"कण्णकि ।"— कोवलन् ने गद्गद कंठ से पुकारा ।

"हूँ ।"

"वे दिन तुम्हें याद हैं, जब हम अबोध बालक थे और अपने माता-पिता के साथ यहाँ आया करते थे और बालू के घरौंदे बना कर खेला करते थे ?"

"क्यों नहीं ? आप उस छुटपन में भी छोटों की सी बातें कहाँ करते थे ?"

"मैंने बड़ों की-सी कौन-सी बातें कर दीं ?"

"आपने कहा था कि इस संगम के किनारे हम आलीशान महल बनवाएँगे और आनन्द से जीवन बितायेंगे ।"

"हाँ, मैंने सच ही तो कहा था ।"

"हमारी बातों में रस लेकर मेरे पिताजी ने कहा था", अरे भाई महा-सत्व तुम्हारे सुपुत्र ने मेरा एक काम आसान कर दिया । मुझे अब वर ढूँढ़ने के लिए भटकना नहीं पड़ेगा ।"

"मैं भी कोई मूर्ख नहीं हूँ, महानायक कि आती लक्ष्मी को ठुकराऊँ । अभी से बात पक्की, गाँठ बाँध लो"— मेरे पिताजी की वे बातें अब भी मेरे कानों में गूँज रही हैं ।"— कोवलन् ने कहा ।

"इसलिये हमें चाहिए कि हम अपने पिता का आभार मानें, जिन्होंने हमारी बातों को बच्चों का खेल न समझा और समय आने पर हमें विवाह के गठबन्धन में बँधवा दिया ।"

"सो तो ठीक है । उस दिन एक और अच्छा सगुन हुआ था, वह याद है तुम्हें ?"

"है क्यों नहीं ? उसी दिन हमारे जहाज, जो व्यापार के लिए सुदूर देशों में गये थे, माणिक-मोती से भरे लौटे थे ।"

कण्णकि घूम कर बैठी और उसके नूपुरों ने हामी भरी ।

"हमारे माता-पिता भी कितने अच्छे हैं कि यौवन का आनंद लेने के लिए हमें अलग घर में बसा दिया ।"—कोवलन् अपनी धुन में बोला ।

कण्णकि पुरानी यादों में खोयी हुई बोली, "बचपन में हमें इन सारी बातों का मतलब समझ में नहीं आ रहा था, फिर भी हम बेहद खुश थे । काश, वे दिन फिर से देखने को मिलते ।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि अब हम खुश नहीं हैं ।"

"कैसी बातें मुँह में लाते हैं । मैं तो यह कह रही थी कि बचपन का जीवन ही निराला है । न छल, न कपट, न बैर, न विरोध ।"

"वह तो ठीक है । पर जवानी का जाय़का भी तो एक चीज़ होता है ।" आँखों में नटखटी लाते हुए कोवलन् बोला ।

"लाख कहिये, बीती सुखद स्मृति के सामने सारा वर्तमान फीका ही है ।"

"पर भविष्य········· ?"

कण्णकि और कोवलन् नेत्रों से एक-दूसरे का पान करने लगे कि हवा में 'झुनन, झुनन' करके पायलों की ध्वनि बहती आयी ।

कण्णकि की आँखें अनायास अपने नूपुरों की ओर झुकीं । विवाह के दिन कोवलन् ने अपने हाथों वे नूपुर उसके पैरों में पहनाये थे । न जाने कितनी देर नूपुर पहनाने के बहाने उसने उसके तलुवे सहलाये थे । स्मरण कर कण्णकि के शरीर में फुरहरी दौड़ गयी । नूपुर भी उसके रोमांच से प्रभावित हो कर बज उठे ।

"अब याद करती हूँ तो हँसी आती है । पर उस समय तो मैं डर गयी थी कि यदि आप पागल हो गये, तो क्या होगा ? विवाह का दिन निकट आ गया था और आपके जहाज मणि द्वीप से नहीं लौटे थे । आप एकदम व्यग्र हो गये थे ।"

"हाँ, विवाह होने तक तुम्हें पायल बनवा देने का वादा जो किया था । माणिकों की प्रतीक्षा जो थी । वैसे तो पागल पहले से भी हूँ, तुम्हारे पीछे ।" कोवलन् खिलखिला कर हँस पड़ा ।

उसी समय अपनी सहेली वसन्तमाला के साथ माधवी उस रास्ते से गुजरी । 'छन-छन' करके गति के अनुरूप उसकी पायलें बज रही थीं । कोवलन् ने आँख उठा कर देखा, तो देखता ही रह गया । सिर से पैर तक उसकी दृष्टि गयी, तो उसकी ज़बान से निकल गया, "ओह ! कितनी सुन्दर है ।"

कण्णकि भी उस सौन्दर्य की अवहेलना नहीं कर सकी और बरबस बोल उठी, "कोई सुन्दर हो तो ऐसी हो ।"

माधवी के नूपुर भी हाँ में हाँ मिलाते हुए झनकने लगे । झट से कण्णकि ने कोवलन् को ऐसा कस कर जकड़ लिया कि लाख प्रयत्न करने पर भी वह अपने को छुड़ा नहीं सका ।

तन से तो कोवलन् उसकी पकड़ में आ गया, पर मन से······ ? मन तो नूपुर-ध्वनि के पीछे था । वे माधवी के नूपुर थे या कण्णकि के······ ?

(२)

"अरे भाई ! कल शाम को तुम कहाँ चले गये ?"

"कहीं नहीं, यहीं तो था । क्यों, क्या बात है ?"

"कल एक बढ़िया नाच था । सोचा कि तुम्हें भी साथ ले चलूँ । इसलिए तुमसे मिलने तुम्हारे घर आया था । पर तुम मिले नहीं ।"

"मैं भी तो एक नाच में गया था । चोल चक्रवर्ती हमारे नगर पधारे हैं न ! उनके स्वागत-सम्मान में जो नाच हुआ था, उसमें मैं सम्मिलित हुआ था ।"

"अरे भाई, उसी में ले जाने के लिए तो मैं तुम्हारे घर आया था । पर तुम नाच-घर में नहीं मिले ।"

"तुम भी तो मेरी नजर में नहीं पड़े । पर सच पूछो तो मेरी आँखों ने नर्तकी को छोड़ कर और किसी को नहीं देखा ।"

"पते की बात कही तुमने । माधवी के नृत्य पर आँखें ऐसी डटी रहीं कि वे अन्त तक नहीं हटीं । मैं तो उसकी हर एक अदा पर फिदा हो गया ।"

"मैं तो बेमोल बिक गया, भाई । उसके सधे कदम ताल पर ऐसे थिरक उठे कि देखते ही बनता था ।"

"हाँ, द्रुत में तो उसने कमाल कर दिया ।"

"उसकी पैंजनियाँ तो मृदंग की थापों को मात कर गयीं ।"

"कंठ भी उसका कितना मधुर है ।"

"कन्हैया वाले गीत पर तो उसका भावाभिनय चरमोत्कर्ष को पहुँच गया कि उर्वशी भी उसके सामने फीकी पड़ जाती ।"

"हाँ, हाँ, वृन्दावन का कृष्ण-कन्हैया आँखों में उतर आया ।"

"रंगमंच की सजावट भी कितनी सुन्दर थी । लंबाई-चौड़ाई वृत्त-व्यास आदि पर ऐसा विशेष ध्यान दिया गया था कि इन्द्र-सभा 'सुधामा' का साक्षात्कार हुआ समझो ।"

"दर्शकों की सुविधा का भी कितना ध्यान रखा गया था ।"

"मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि रंग-निर्माण की कला कोई सीखना चाहे तो इन चोल-देशवासियों से सीखे ।"

"छवि का भी प्रबन्ध वैविध्यपूर्ण था ।"

"रसिकता में भी चोल-देशवासियों की टक्कर का कौन है ?"

"महाराजा तो माधवी की नृत्य कला से इतने प्रभावित हो गये कि अपने गले की मरकत-माला ही उतारकर भेंट कर दी ।"

"वे तो बड़े कला-मर्मज्ञ ठहरे । क्यों न देते ? मेरे बस की बात होती तो मैं माधवी के नाम सारी पृथ्वी लिख देता ।"

बाजार भर में माधवी के नृत्य की ही चर्चा थी । किसी को मोल तोल की सुध ही नहीं रही ।

कोवलन् भी बड़ा सूक्ष्म कला-रसिक था । कण्णकि को भी अपने साथ ले जाना चाहता था । पर एक छोटी-सी बात पर वह इतनी रूठ गयी थी कि उसका साथ देने के लिए तैयार नहीं हुई । इसलिए वह अकेले ही नृत्य में गया था । नृत्य में तल्लीन होने पर कण्णकि की अनुपस्थिति उसे खटकी नहीं । ऐसा तन्मय और आत्मविभोर हो कर देख रहा था कि मानो माधवी उसी के लिए नृत्य कर रही हो ।

आज अपनी रूठी पत्नी को मनाने के लिए उसको साथ ले कर टहलने निकला । माधवी की ऐसी प्रशंसा सुनी तो कण्णकि से बोला, "तुमने रूठ कर क्या पाया ? मेरे ख्याल से तुमने एक अच्छा-सा मौका खो दिया ।"

"नहीं, अगर मैं नहीं रूठती तो आप घर से निकलते ही नहीं । या तो मेरे पीछे पड़े रहते या व्यापार की बातें सोचा करते ।"

"सो तो ठीक है । यकीन मानो, अगली बार माधवी का नृत्य कहीं हो तो अवश्य तुम्हें साथ ले जाऊँगा । अच्छा, अब बोलो— तुम्हें क्या चाहिए ?"

कण्णकि अभी कुछ निर्णय नहीं कर पायी थी कि एक कुब्जा उस भीड़ में से गुजरी और अपने हाथ की मरकत-मणिमाला को हवा में झुलाती हुई बोली, "अरे, कोई है इसको मोल लेने वाला ?"

"अरे, यह तो वही माला है, जिसे महाराजा ने उपहार के रूप में माधवी को दिया था ।"

"उपहार में दी हुई चीज को बेचने की क्या जरूरत पड़ गयी उसे ?"

"माधवी इस बहुमूल्य उपहार से अपना जीवन सँवारना चाहती है, इसलिए बेचना चाहती है ।" कुब्जा ने कहा ।

"इसे कितने में बेचना चाहती है वह ?"

"यह तो अनमोल वस्तु है । फिर भी कम से कम दाम में वह देने को तैयार है । जो एक हजार आठ स्वर्ण मुद्राएँ देगा, वह इसका स्वामी हो जाएगा ।"

वहाँ कोई ऐसा दिलदार न था । सब अपनी-अपनी थैलियाँ टटोलने लगे और बगले झाँक कर अपना रास्ता नापने लगे ।

कोवलन् ने एक दृष्टि कण्णकि पर डाली और दूसरी मरकत-माला पर। कल्पना की आँखों ने कहा कि कण्णकि के गले में वह माला खूब फबेगी।

इतने में कुब्जा के मुख से निकला, "इस समृद्ध शहर में ऐसा कोई वणिक पुत्र नहीं है, जो एक हजार आठ स्वर्ण मुद्राएँ दे सके ?"

"क्यों नहीं ? मैं तो हूँ।"— कहकर कोवलन् अपनी स्वर्ण मुद्राओं की थैली निकालने लगा।

इसी समय कण्णकि ने टोका, "हमें इसकी क्या जरूरत है ?"

"तुम्हें हो या न हो, मुझे तो इसकी बड़ी जरूरत है।"—कोवलन् के मुख से यह सुना, तो कण्णकि का माथा ठनका। "कौन-सा अनर्थ होने जा रहा है ?" उसे समुद्र-तट की बात याद हो आयी। कहीं कोवलन् ने माधवी पर अपना दिल वार तो नहीं दिया। फिर भी साहस बटोर कर बोली, "आपको इसकी जरूरत है ? किसलिए ?"

"इसलिए कि अपनी प्रियतमा के गले की शोभा इस माला से बढ़ाऊँ और अपने नगर की प्रतिष्ठा बचाऊँ।"— कोवलन् ने कहा।

कण्णकि की जान में जान आयी। "अरे, मेरा मन भी कितना दुर्बल है कि एक पल में आकाश-पाताल सोच गयी।"

कोवलन् ने कुब्जा के हाथों एक हजार आठ स्वर्ण मुद्राएँ गिनीं और माला ले कर कण्णकि के गले में पहना दी। दोनों प्रेम-पुलकित हो कर एक दूसरे को देखने लगे। कण्णकि के आनन्द का तो वारापार नहीं था।

कुब्जा ने यह दृश्य देखा, तो उसे एक बात याद आयी, बोली, "अरे मैं तो एक बात कहना भूल ही गयी। माधवी ने कहा है कि इस माला को जो कोई खरीदेगा, उसके हाथों वह बेमोल बिक जाएगी। इसलिए आपको अभी मेरे साथ उसके घर चलना चाहिए।"

कण्णकि को काटो तो खून नहीं। बोली, "इस माला के लिए यहाँ कौन रो रहा था कि नाहक आपने यह बला मोल ली।"

"कण्णकि ! तुम भी कैसी मूर्खता की बातें करती हो ? मुझे क्या समझ रखा है ? एक नारी के सामने हम पुरुष लोग हार मान जाएँ, तो संसार क्या कहेगा ? निश्चिन्त रहो, मैं अभी माधवी के घर हो आता हूँ। स्थिति समझा कर वापस लौट आऊँगा।"

"जो आपकी इच्छा । मैं कौन रोकने वाली होती हूँ ? मेरे रोकने पर आप थोड़े ही रुकने वाले हैं ? पर मेरा तो दिल यह कह रहा है कि यह सब भले के लिए नहीं है ।"

"यही नारियों की बड़ी कमजोरी है ।"

"इसी कमजोरी के हाथों में पुरुष-सिंह बिक जाते हैं ।" कण्णकि ने ठंडी आह भरी ।

"धीरज रखो ! मैं तुरत वापस लौट आऊँगा ।" कहकर कोवलन् कुब्जा के साथ हो लिया और कण्णकि का रथ घर की ओर मुड़ा । उसके दिल की परेशानी चेहरे पर फूट पड़ी ।

(३)

शाम का झुटपुटा था । माधवी के घर का सारा वातावरण महक रहा था । प्रवेश-द्वार दीपमालिकाओं से सजा था । कोवलन् को वहाँ तक पहुँचा कर कुब्जा पिछवाड़े की ओर चली गयी ।

"पधारिये ।"

आगे बढ़ कर वसन्तमाला ने कोवलन् का स्वागत किया और बैठक तक ले गयी ।

बैठक की साज-सज्जा कलापूर्ण नृत्य-प्रांगण के रूप में हुई थी । चारों कोनों में कामदार दीप-स्तम्भ थे, जिनमें दिये जल रहे थे । दीप-शिखाएँ मन्द-मन्द हवा में ऐसी थिरक रही थीं, मानो नृत्य का अभ्यास कर रही हों । कोवलन् ठगा-सा खड़ा रह गया । उसे बैठने तक की सुध न रही ।

पायलों की मधुर रुनझुन ध्वनि गूँज उठी, "तशरीफ रखिये न ।"

कोवलन् मयूर से सजे सुन्दर गद्देदार आसन पर बैठा और फिर चारों ओर घूम कर देखने लगा कि आवाज कहाँ से आ रही है ।

द्वार का रक्ताभ परदा हिला । माधवी ने अत्यन्त आकर्षक वेश में प्रवेश किया । ऐसा लगा मानो उषा प्रवेश कर रही हो । उसकी चाल में हंसिनी को लजाने वाली मोहकता थी और नेत्रों में थी खंजन को हराने वाली चपलता ।

दोनों की आँखें चार हुईं, तो माधवी पूछ बैठी, "आप ?"

"क्या तुम मुझे पहचानती हो ?"

"क्यों नहीं ? आप तो मेरे कब से जाने-पहचाने हैं ?"

"सच ?"

"हाँ, मैंने एक बार आपको समुद्र-तट पर देखा है और कल राज दरबार में जब मेरा नृत्य हुआ था तब आप आगे की पंक्ति में बैठे थे । समुद्र तट पर तो आप दो थे, नृत्य-सभा में आप एक ही थे ।"

"क्या करूँ ? मैं तो उसे लाने ही को था । पर वह एक छोटी-सी बात पर रूठ गयी थी ।" कोवलन् यह कहते हुए लज्जा से गड़ गया ।

"रूठने में भी एक तरह का मज़ा जो है ।" होंठों-ही-होंठों में हँस कर माधवी ने कहा ।

कोवलन् इसका क्या जवाब दे सकता था ?

माधवी ने बात आगे बढ़ायी, "आप तो बड़े कला-रसिक मालूम होते हैं । —अच्छा, कहिये ! यहाँ पर कैसे पधारना हुआ ?"

कोवलन् सकपका गया । "यह भी कैसी औरत है कि घर बुलाकर मेरा अपमान कर रही है ।" फिर भी सँभल कर सकुचाते हुए बोला, "मैं अपनी इच्छा से कहाँ आया ? मरकत की माला बेचने तुम्हारी कुब्जा दासी आयी थी, उसने कहा था कि माला के खरीदार को तुमसे मिलना चाहिए । उसकी बात रखने के लिए मैं उसके साथ यहाँ चला आया ।"

"अरे, आप ही उस माला के खरीदार हैं ? तब तो बड़ा अनर्थ हुआ ।"

"अनर्थ ! कैसा अनर्थ ?"

"मेरी तो यह शर्त थी कि जो कोई वह माला खरीदेगा, वह मेरा पति होगा । यह तो मैंने भरे दरबार में ही कहा था । आप तो विवाहित हैं । वह माला क्यों मोल ली ?"

"मुझे तो इस बात का पता ही नहीं था । मैं तो नृत्य समाप्त होने के पहले ही वहाँ से उठकर चला गया था । कारण यह है कि रूठी पत्नी को मनाने के लिए मेरा मन उतावला हो रहा था । अलावा इसके, भरे बाजार

में माला मोल लेने को कोई तैयार नहीं हुआ तो मेरे आत्मसम्मान ने मुझे टोका और मैंने वह माला खरीद ली ।"

"गणिकाओं के कुल में जन्म लेने पर भी मैं चाहती थी कि कुलीनों की तरह जीवन बिताऊँ । अब मेरे प्रण का क्या होगा ?"

"बस, विवाह कर लो ।"

"किससे ?"

कोवलन् के लिए वह प्रश्न समस्या बन गया । किस मुँह से उससे वह कहेगा कि मुझको ही वर लो ।

"इस सूरत में मुझे एक ही रास्ता सूझता है । मुझे आमरण कुँआरी ही रहना पड़ेगा क्योंकि मैं एक दूसरी नारी का दिल नहीं दुखाना चाहती, और यह भी नहीं चाहती कि मेरा प्रण हवा में उड़ जाए । साथ ही, स्त्रियोचित कमजोरी को दिल में स्थान देना भी तो ठीक नहीं है ।"

"चिन्ता न करो । मैं अपनी पत्नी को अच्छी तरह से जानता हूँ । वह दूसरी नारी के दिल को दुखाएगी नहीं ।"

"मतलब ?"

"कितने ही पुरुषों के दो-दो पत्नियाँ होती हैं । वैसे ही मैं तुमसे विवाह करूँ, तो वह असन्तुष्ट नहीं होगी, बल्कि प्रसन्न होगी कि मेरा पति एक प्रेमातुर विवश नारी का प्रण रख सका ।" कहते-कहते कोवलन् अपनी अधीरता को काबू में न रख पाने से पुरुषोचित कमजोरी का शिकार हो गया । वहाँ प्रेम का आवेश एकांगी भी नहीं था ।

तब तक पूनम का चाँद निकल आया था । लगा कि अपनी ही प्रकृति के एक पुरुष को शिकार होते देख कर वह मन-ही-मन हँस रहा हो ।

माधवी ने कहा, "आप जो भी कहें, मेरा तो दिल यह नहीं मानता कि एक विवाहित पुरुष को अपना पति बनाऊँ । पर दूसरा कोई चारा नहीं है । मैं तो दिल की कमजोर नारी ठहरी । अपना प्रण निभाना है, तो मुझे यही करना होगा । न जाने, किस कु-घड़ी में बिना सोचे-विचारे ऐसा प्रण कर डाला था ।"

"तुमने जो किया, सो अच्छा ही किया । सच पूछो, तो मैं यही कहूँगा कि तुमने अपने समाज में एक क्रान्ति ही उपस्थित कर दी और एक आदर्श प्रस्तुत किया ।"

"पर उस आदर्श से क्या लाभ, जिससे दूसरों को दुःख पहुँचे ।" माधवी खिन्न स्वर में बोली ।

"दुःख न करो, माधवी ! हो सकता है कि मैं साधारण कमजोर दिलवाला व्यक्ति होऊँ । पर मेरी कण्णकि तो असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न है । वह हमारी विवश स्थिति को समझेगी, तो हम दोनों को माफ कर देगी ।" कोवलन् ने माधवी का हाथ अपने हाथ में ले लिया और अपनी कमजोरी का परिचय दिया ।

"सच ? तो मैं ऐसी बहन पा कर अपने को धन्य समझूँगी ।" माधवी ने कोवलन् की छाती पर अपना सिर लगाया और अपने को आश्वस्त अनुभव करने लगी ।

बस, कोवलन् ने अपने को माधवी के हाथ खो दिया और उसके बालों को अपनी उंगलियों से सहलाने लगा । उसे इस बात की सुध तक नहीं रही कि घर से निकलते समय कण्णकि से वह क्या वादा कर आया था ।

कण्णकि कोवलन् से बिछुड़ कर घर आयी, तो वह परेशान हो गयी ।

मैंने यह क्या कर दिया ? उस कुब्जा के साथ उन्हें जाने क्यों दिया ? मुझे तो इस बात का पता होना चाहिए था कि पुरुष भौंरे होते हैं और जहाँ शहद देखते हैं, वहीं मँडराने लगते हैं । मुझे तो अपने पति के गुणों से भली-भाँति परिचित होना चाहिए था । उस दिन समुद्र-तट पर एक सौन्दर्यवती नारी को देखा, तो उनकी आँखें उसके रास्ते पर कैसे बिछ गयी थीं । उनकी जबान से भी तो निकला था—'ओह, कितनी सुन्दर है ।' मुझे तो उसी समय उनके दिल को काबू में कर लेना चाहिए था । पर उस समय उन्हें खुश करने के लिए मैंने झूठमूठ कह दिया था कि 'कोई सुन्दर हो तो ऐसी हो ।' पगहिया छोड़ कर पूँछ पकड़ने का प्रयास करूँ, तो क्या हाथ लगेगा ?

"अरे, मैं भी कैसी अनर्गल बातें सोचती हूँ ? नहीं, मेरे कोवलन् दिल के ऐसे कच्चे नहीं हो सकते । वे तो कह गये हैं कि माधवी को स्थिति समझा कर लौट आऊँगा । मैं अपने पति को कमजोर कैसे मानूँ ?"

भाँति-भाँति के विचारों में समय बीतता गया और कोवलन् ने लौटने का नाम नहीं लिया । कण्णकि एकदम व्यग्र हो उठी । घर के अन्दर बैठे रहना उसके लिए दुश्वार हो गया । घोंसले में बैठी मादा चिड़िया अपने नर की प्रतीक्षा में जिस प्रकार पँख फड़फड़ा कर व्याकुलता से बाहर-भीतर उछल-कूद मचाती है, उसी प्रकार बेचैन कण्णकि के पैर समूचा घर माप गये ।

पूनम का चाँद सिर पर आ गया था । चाँदनी चारों ओर अमृत-वर्षा सी कर रही थी । प्रेमियों को सुख देने वाले चाँद में न जाने कहाँ से विरहियों को सताने का भी गुण आ जाता है । कल तक जो चाँद कण्णकि को सुख पहुँचाता रहा, वह आज काट खाने को दौड़ा । चाँद, सूरज बन कर तपने लगा, वह कण्णकि को ग्रीष्म-धूप की तरह तपाने लग गया । वह रात भर सो न सकी और सारी रात उसने जागरण में बिता दी ।

एक रात के रतजगे ही में उसकी सूरत-शकल एकदम बदल गयी । सुबह के चन्द्रमा की तरह उसका चेहरा फीका पड़ गया । देखने वाले यह पहचान ही नहीं पाये कि वह वही पुरानी कण्णकि है या दूसरी ? उसके हाथ-पाँव इतने शिथिल हो गये कि कंगन और नूपुर ढीले प्रतीत हो रहे थे । महीन साड़ी भी भारी लग रही थी । मेखला कटि में टिकती नहीं थी । उसने मंगल-सूत्र को छोड़कर शेष सारे गहने उतार दिये । आँखों में काजल लगाना, बालों में तेल लगाना और माथे पर सिन्दूरी तिलक लगाना आदि सब साज-सँवार वह भूल गयी । वह अपना साज-सिंगार करे तो किसलिए करे, जबकि उसकी दाद दे कर सौन्दर्य का रस लेने वाला पास न रहा ।

रात को चाँद और दिन में सूरज बारी-बारी से उसे तड़पाने लगे । फिर भी विरह की आग में खूब तप कर अपने को खरा सोना बनाने के उपक्रम में वह लगी रही ।

(४)

भूगोल और जलवायु के आधार पर प्राचीन तमिल प्रदेश चार प्रकार का माना जाता था । मुल्लै, कुरिंचि, मरुतम् और नेयदल नाम से वह विख्यात था । समुद्र और समुद्र-तट की भूमि 'मुल्लै' कही जाती थी जिसके अधिदेवता भगवान् विष्णु थे । 'कुरिंचि' पर्वतीय प्रदेश को कहते थे । इसके अधिदेवता

मुरुगन यानी कुमार कार्तिकेय थे । 'मरुतम्' कृषि के लिए उपयुक्त भूमि थी, इन्द्र इसके अधिदेवता थे । 'नेयदल' रेतीले प्रदेश को कहते थे । वरुण इसके अधिदेवता माने जाते थे । इन प्रदेशों में उन्हीं देवताओं की प्रचुर मात्रा में पूजा होती थी, जिनके वे अधिनायक माने जाते थे ।

कावेरी पूम्पट्टिनम् 'मरुतम्' प्रदेश में आता था । इसलिए वहाँ इन्द्र देवता की धूमधाम से पूजा होती थी । यह इन्द्रोत्सव 'इन्द्र विला' नाम से विख्यात था । यह इन्द्र विला चैत्र के महीने में पड़ता था । चैत्र-पूर्णिमा से प्रारम्भ हो कर यह उत्सव अट्ठाईस दिन मनाया जाता था । आखिरी दिन लोग समुद्र-स्नान को जाते और सारे दिन वहीं मोद-मंगल मनाते थे ।

इन्हीं दिनों की बात थी । चैत्र-पूर्णिमा निकट थी । इन्द्रोत्सव का आयोजन बड़ी धूमधाम से हो रहा था । नगर का कलेवर ही बदल रहा था । सड़कों पर से पुरानी रेत हटाकर नयी रेत बिछाई जाती थी ।

उत्सव के कामों में जुटे नर-नारियों ने इन्द्रोत्सव को एक प्रकार से वसन्तोत्सव का रूप दे दिया था । कावेरी पूम्पट्टिनम् शहर भर के प्रेमिल जोड़े इस इन्द्रोत्सव की बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे थे । सबके सब, झुण्ड के झुण्ड समुद्र किनारे आ पहुँचे । रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्र पहने युवक-युवतियाँ इधर-उधर घूमने लगीं । सारा वातावरण आमोद-प्रमोद से भर गया था ।

पर एक मात्र कण्णकि ही एक ऐसी थी जो इस आमोद-प्रमोद में भाग न ले सकी । वह अपने साथ कोवलन् को न पाकर विरहाग्नि में जल रही थी । उसकी सहेलियों ने शीतोपचार से उसका ताप मिटाने का निष्फल प्रयत्न किया । प्रयत्न निष्फल हो तो भी कोई बात नहीं, उसने आग में घी का काम जो कर दिया ।

इन्द्रोत्सव के प्रारम्भ होने की सूचना देते हुए वीथी में नगाड़े बजने लगे, उस ध्वनि ने कण्णकि का आपाद-मस्तक हिला दिया, मानो हजारों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मार दिया हो ।

उस दिन जो सहेली कण्णकि से मिलने आयी थी, उसने कहा, "काश ! इस अवसर पर कोवलन् तुम्हारे साथ होते—"

उस सहेली के वचनों में दूषित मंशा नहीं थी, पर उससे घाव भरा नहीं, ताजा हो गया । सहानुभूति प्रकट करने वाली सहेली से कण्णकि को यह कहना पड़ा, "भगवान् के लिए मेरे प्रति हमदर्दी न दिखाओ । मुझे अपने

भाग्य पर रोने के लिए छोड़ दो । जब मेरा भाग्य ही ऐसा है, तो तुम लोग क्या कर सकोगी ?''

इन्द्रोत्सव जोरों पर था । उसके समाप्त होने के दिन निकट थे । कुछ सहेलियाँ मिल कर हाट-बाजार करने जा रही थीं । बातों के सिलसिले में किसी ने कहा, ''परसों नृत्य भवन में कोवलन्-माधवी की जोड़ी देखी । ओफ ! वे कितने प्रसन्न हैं ।''

''तुम्हें ईर्ष्या होती है ?'' आँखें मटका कर दूसरी ने हँसी उड़ायी ।

''अरी, सुनो जी, माधवी का हाथ अपने हाथ में लिये वह हर्ष विभोर होकर ऐसा चल रहा था— ऐसा चल रहा था कि—'' कहते-कहते उसने अपनी सहेली का हाथ थाम लिया ।

''अजी, हाथ छोड़ो । न मैं कोवलन् हूँ और न तुम माधवी ।''

वातावरण किलकारियों से गूँज उठा ।

''बेचारी कण्णकि की दशा का ख्याल करोगी तो क्या इस तरह हँस पाओगी । मुझे तो कोवलन् पर इतना गुस्सा आता है कि अगर मुझमें ताकत होती, तो—'' गुस्से में प्रवाह टूट गया, वह बात पूरी नहीं कर पायी ।

''ये पुरुष बड़े ही निर्मम होते हैं । बेचारी कण्णकि वहाँ आहें भरती रहती हैं और यहाँ कोवलन् माधवी के साथ मजे में घूम रहे हैं ।''

हाँ, इन्द्रोत्सव कण्णकि के लिए अभिशाप और माधवी के लिए वरदान सिद्ध हुआ । माधवी ने कहाँ सोचा था कि उसके भाग्य में स्वर्ग-सुख लिखा है । शहर का सर्वश्रेष्ठ श्रेष्ठि पुत्र कोवलन् अब उसके हाथों का कठपुतला था । वह अपने आमोद-प्रमोद में मस्त थी । कण्णकि के हृदय की आँच उसका कुछ नहीं कर सकी ।

इन्द्रोत्सव के अन्तिम दिन सारा नगर समुद्र-तट पर था । लोग समुद्र-स्नान का आनन्द लूट रहे थे । एक ओर जन-समुद्र लहरा रहा था, दूसरी ओर जल-समुद्र हँस रहा था । वह दृश्य देखते ही बनता था ।

माधवी ने कोवलन् से कहा, ''चलिये, हम भी समुद्र-तट चलें ।''

नेकी और पूछ-पूछ । कोवलन् ने सहर्ष स्वीकार कर लिया । फिर क्या ? उनके ठहरने के लिए तुरन्त एक शामियाना तैयार हो गया । उसके पास ही एक मंच, जिस पर से सारा दृश्य देखा जा सके ।

माधवी की सखी वसन्तमाला मोद में मोद भरने की कला जानती थी । अतः साथ में वीणा ले जाना नहीं भूली । न जाने, कब उसकी जरूरत पड़े ।

सारे शहर में एक ही प्राणी घर बैठा था, जिसका हृदय-सागर आहें भरता था । वह थी बेचारी कण्णकि ।

(५)

"माधवी ! उधर देखो, समुद्रराज क्या कर रहा है ?"

"इधर आप जो कर रहे हैं, उसी की नकल उतार रहा है । देखिए, कावेरी उसके गाढालिंगन में कैसी हो रही है ।"

माधवी ने धीरे से कोवलन् के बाहुपाश से अपने को छुड़ाते हुए सलज्ज उत्तर दिया ।

"इस तरह के उत्सव इसीलिए न मनाए जाते हैं कि लोग अपनी सारी चिन्ताओं को भूल कर आनन्द मनाएँ ।"

"आपके मन में ऐसी कौन-सी चिन्ता है कि इस तरह प्रश्न कर रहे हैं ?"

"मेरे मन में चिन्ता के लिए स्थान ही कहाँ है ? उसमें तुम ऐसे समा गयी हो कि रत्ती भर भी दूसरी वस्तुओं के लिए गुंजाइश नहीं है ।"

"आप व्यर्थ ही मुझे काँटों में घसीट रहे हैं । सच पूछिये तो आपने मेरे मन पर ऐसा आधिपत्य जमा लिया है कि मैं नाच-गान तक भूल गयी ।"

"तो मैं तुम्हें सिखाऊँ ?"

"सीखने का मन हो, तभी न आप सिखा सकेंगे । मेरा तो अब जी कर रहा है कि कुछ सुनूँ ।"

"क्या सुनोगी ? बात या गीत ?"

"गीत ।"

"वसन्तमाला की सूझ को दाद दो कि वीणा लाना नहीं भूली ।"

कहते हुए कोवलन् ने वीणा उठायी और उँगली फेरी । फिर अपने सुर से उसका सुर मिलाया । तराना छेड़ते-छेड़ते वह भावावेश में अपने को

खो बैठा । एक बार माधवी की ओर ऐसी दृष्टि फेरी, मानो कल्पना के जगत् में विचरण कर रहा हो ।

\+ + +

तमिल भाषा का प्राचीन साहित्य मोटे तौर से दो विभागों में बँटा है । एक का बाह्य-जगत से सम्बन्ध है, जिसे 'पुरम्' कहते हैं । दूसरा अन्तर्जगत से नाता रखता है, जिसे 'अहम्' कहते हैं । 'पुरम्' में वीरता, शूरता, युद्ध आदि का वर्णन होता है और 'अहम्' में अन्तर्मन की बारीकियों का विशद् विश्लेषण होता है । प्रीति की रीति पर 'अहम्' साहित्य के पदों ने कमाल ही कर दिया है । मानव-मन की थाह कौन पावे ?

सामने कावेरी और समुद्रराज के संगम का दृश्य देखा, तो नदी का वर्णन करने की इच्छा जोर मारने लगी । नदी के बाह्य रूप के वर्णन को उसने अपना विषय नहीं बनाया, बल्कि उसके अन्तर्मन को पकड़ कर गाने लग गया । ये गीत नदी-गीत (आट्ठ वरि) नाम से विख्यात हैं ।

पार्वती से परिणय करने वाले भगवान् चन्द्रचूड़ शिव तो हैं ही । भगीरथ के लिए गंगा को पृथ्वी पर लाते हुए अपने सिर पर धारण कर लिया और गंगाधरेश्वर हो गये । गंगा तो उनके मिलन से खुश हुई । पर तुम.........? रास्ते में तुम्हारे प्रेम के भूखे कितने ही खड़े थे । तुमने किसी की ओर आँख उठा कर नहीं देखा । सीधे तुम यहाँ आयी और अपने प्रियतम समुद्रराज से मिलकर खुश हुई । इसी को पतिव्रता नारी का गुण कहते हैं ।

"वाह !" माधवी के मुख से निकला और उसे प्रोत्साहन मिल गया ।

कावेरी या कावेरी के पातिव्रात्य का वर्णन करते हुए सच पूछा जाए तो कोवलन् के अवचेतन मन में कण्णकि या माधवी का विचार ही नहीं आया था । परिणीता पत्नी को मरीचिका में छोड़ कर माधवी के साथ सुखमय जीवन बिताने वाले कोवलन् को कण्णकि का स्मरण आना कहाँ से सम्भव था ? उसने कल्पना के जगत् में विचरते हुए मरीचिका गीत (कानल् वरि) गाये ।

समुद्र तट से वह गा रहा था । समुद्र के किनारे अधिकतर मछुए ही बसते हैं न ? इसलिये उसकी आँखों के सामने एक मत्स्य-सुन्दरी का चित्र उभर आया ।

उसका चितेरा बड़ा चतुर था । चाँद को धरती पर उतार लाया । उस पर मीन, धनुष और काले बादलों का चित्र बनाया । देखते-देखते वे आँखें, भौंहें और श्याम रंग की केशावली बन गये । अपने पुष्प-वाणों से प्रेमी जनों को तंग करने वाला मनमथ डटकर बैठ गया वहाँ । फिर क्या, उसकी आँखें दुधारू तलवार हो गयीं । उसके वार से हम बेमौत मरे जाते हैं ।

इस आशय का गीत गाते हुए कोवलन् के होंठों में मुस्कान बिखरी ।

माधवी ने उस मुस्कान का एक दूसरा ही अर्थ निकाला । कोवलन् का मन अन्यत्र कहीं आसक्त है । नहीं तो ऐसा गाना क्यों गाता ? हो सकता है कि कण्णकि की याद आयी हो । नहीं, ये पुरुष भौंरे होते हैं । जहाँ मधु देखा, वहाँ टूट पड़ते हैं । पहले कण्णकि, बाद को माधवी, आगे की कौन जाने ?········ यह सब हमारा भ्रम हो तो भी हमें चाहिए कि इन्हें ठिकाने से रखें ।

यह ख्याल आया तो उसे एक विनोद सूझा । कोवलन् के हाथ से वीणा लेती हुई बोली, "मैं भी कुछ सुनाऊँ ?"

"हाँ, हाँ ! सुनाओ । मैं तो यही कहने जा रहा था ।"

कोवलन् का प्रोत्साहन पा कर माधवी ने आलाप लेना शुरू किया । उसकी मधुरिमा में कोवलन् ऐसा रीझ गया कि उसकी आँखें मुँद गयीं और वह कल्पना लोक में विचरने लगा ।

माधवी ने मरीचिका गीत गाया—

"दिल चोर मेरे, बाग में आये लोनार के रास्ते से
दिल मेरा बाग बाग हो गया ।
बोले, 'करो मृगनयनी, मुझ पर कृपा'
बार-बार रटते थे, 'कृपा, कृपा' ।
मेरे मृग-नयन वे भूलेंगे नहीं ।
मैं क्यों पिलाऊँ उन्हें मृगजल ?

\+ \+ \+

पक्षियों का कलरव थम गया !
दिनकर जाने कब छिप गया !

पूनम के चाँद ने बीमारी बता दी !
आँखों ने आँसू की झड़ी लगा दी !
अगर आये नहीं वे आज रात !
मेरे प्राण न रहेंगे कल प्रात ।"

सुनते-सुनते कोवलन् की मुँदी आँखों के सामने जो पुरुष आया, वह पराया था और जो मृगनयनी आयी, वह माधवी थी । उसके मन में एक विचार कौंधा कि हो न हो, दाल में जरूर कुछ काला है, माधवी का मन किसी दूसरे पुरुष में अटक गया है । इसीलिए वह इस आशय का गीत गा रही है, आखिर गणिका ही तो ठहरी । जब तक एक पुरुष का धन-तन चूस सकती है, चूस लेती है । नीरसता का अनुभव होते ही हट जाती है । और फिर किसी दूसरे को फँसाने के लिए मकड़ी की तरह जाल बुन लेती है । हम ही एक ऐसे हैं जो उसके प्रेम को सच्चा मान कर उसके पीछे पड़े रह गये ।

माधवी ने गाना पूरा किया और कोवलन् के सीने से लिपट गयी । फिर धीमे स्वर में बोली, "गाना पसन्द आया ?"

कोवलन् ने सोचा, "अरे, यह कैसा 'तिरिया चरित्तर' रच रही है । किसी दूसरे को दिल दे दिया है और मुझसे प्रेम का स्वांग कर रही है ।"

"हाँ, हाँ बेहद पसन्द आया ।" कहते हुए कोवलन् झट से उठ बैठा । माधवी का माथा ठन से भूमि से टकराया । उसने सँभल कर आँख उठा कर देखा, तो कोवलन् का रौद्र रूप ही दिखायी पड़ा । उसकी समझ में नहीं आया कि क्या हो रहा है । हिम्मत कर पूछा, "मैंने कौन सा अपराध किया कि मुझ अनाथ को इस प्रकार ठुकरा रहे हैं ?"

"तुम अनाथ कहाँ हो ? 'करो मृगनयनी, मुझ पर कृपा' कहने वाला तो तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा है । तुम सनाथ हो, कितने ही रूपाजीवी हैं, जो तुम्हें सनाथ रखेंगे ।" कोवलन् गरज पड़ा ।

"वह तो काल्पनिक कविता थी ।"

"हो सकता है । पर कल्पना के पैदा होने का भी कोई आधार रहता ही है और उस कल्पना के साकार होने में देरी नहीं लगती ।"

"आपने जो गाया था, उसमें भी तो……"

श्री मुमुक्षु भवन
वेदवेदाङ्ग महाविद्यालय
असी, वाराणसी

"मेरा दिल जानता है, मेरे मन में खोट नहीं ।"

कोवलन् के अवचेतन मन में कण्णकि उभर आयी । वह पैर पटक कर तेज कदमों वहाँ से चला गया ।

अब वहाँ माधवी थी; और सामने था गरजता समुद्र ।

(६)

"कण्णकि ! इस तरह दुःख ही करती रही तो क्या होगा ? न तो तुम कुछ खाती-पीती हो, न आँखें झँपती है"—दिलासा देती हुई देवन्ती ने कहा ।

देवन्ती कण्णकि की अनन्य सहेली थी । प्रीत की रीत से वह परिचित थी । असल में, दोनों एक ही नैया पर सफर कर रही थीं ।

"क्या करूँ, जितना भी समझाऊँ, मन नहीं मानता । जागरण में प्रियतम की अनुपस्थिति खटकती है । सोती हूँ तो स्वप्न में आ कर मेरे मन को उद्वेलित करते हैं । दोनों तरह से मुझ पर ही मार पड़ती है । किसी तरह चैन नहीं पड़ता । निगोड़ी आँखें हर क्षण उनको देखने के लिए तरसती रहती हैं । जन्म-जन्म का गठ-बन्धन जो ठहरा ।"

"सो तो है ही । फिर भी……"

"मुझे इस बात का दुःख नहीं है कि वे माधवी के हो गये । माधवी के साथ रहने से उन्हें सुख मिलता है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । वे जहाँ भी रहें, सुखी रहें, यह मेरी कामना है । उनका सुख मेरा अपना सुख है । लेकिन मैंने कौन-सा अपराध किया है कि उन्होंने मुझे दर्शन देना ही छोड़ दिया ? कभी एकाध बार इधर आकर मुझे दर्शन दे जाते तो उनका क्या बिगड़ जाता ?"

"तुमने कुछ अपराध किया होता, तो वे जरूर दर्शन देते, इसलिए कि तुम्हारे दिल को खरोचें । पर जब अपराध उनका है, तो वे किस मुँह से तुमसे मिलते ?"

"नहीं, मैं उन्हें अपराधी मानने को बिलकुल तैयार नहीं हूँ । लगता है, माधवी में जो आकर्षण है, वह मुझमें नहीं है । माधवी उन्हें जितना

प्रसन्न रखती है, उतना शायद मैं नहीं रख पाती । इस हालत में अपराध उनका है या मेरा ?"

"तुम तो अपने पति को एकदम देवता मानती हो । उनमें किसी प्रकार की कमी-त्रुटि नहीं देखना चाहती । ऐसी पतिपरायणा स्त्रियाँ लाखों-करोड़ों में एक होती हैं ।"— देवन्ती उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी ।

"मेरी क्या प्रशंसा करती हो ? माधवी की करो । वह तो सीपी में मोती है । गणिका के कुल में उत्पन्न होने पर भी पर-पुरुषों की छाया तक से परहेज़ रखती है । सुनती हूँ कि उन्हें खुश रखने में वह कोई कसर नहीं उठा रखती । उसी में अपने जीवन को सार्थक पाती है । इसलिए उस पर ईर्ष्या करने को जी करता है । पर ईर्ष्या करूँ कैसे ?"

"कण्णकि, तुम कितनी भली हो ! और कितनी भोली भी हो । सौत की डाह से ऊपर उठ कर माधवी को एक आदर्श स्त्री के रूप में खड़ा कर दिया है ।"

वे माधवी के ही रहें, मगर एकाध बार मुझे दर्शन दे जाएँ, इतना ही मैं चाहती हूँ । तुम पूछोगी कि तुम्हीं जा कर क्यों नहीं मिल लेतीं ? क्या करूँ, मेरा मान पैरों में बेड़ी डाल देता है । सखि, मैं अपना एक सपना तुमसे कहना भूल गयी । जागते-जागते मैंने सपना देखा । दबे पाँव चुपचाप वे मेरे सामने आकर खड़े हो गये । उनका स्वागत-सत्कार करने उठी, तो मेरे अन्दर से मानिनी कण्णकि ने मुझे यह कह कर रोक दिया कि "अरी बेवकूफ ! तू यह क्या करने लग गयी । मानिनी स्त्रियाँ, प्राण भले ही जाए, अपना मान नहीं छोड़तीं । मजा तो उसी में है, जब पुरुष आकर मनायें ।" मैं उसकी बात मान गयी ।

वे कुछ देर खड़े रहे, इस विचार से कि मेरी ओर से सुलह का पहला कदम उठाया जाएगा । मैं अड़ी रही, तो वे उल्टे कदमों लौट पड़े । मेरे पैरों के नीचे से भूमि खिसकने लगी और मैं बोल उठी, "झूठा मान क्यों करते हैं । अगर आपका मान सच्चा होता, तो मेरी खोज में आप क्यों आते ? मैं ही न आपको खोजती हुई आयी होती ।"

"ठीक कहती हो ! मैं आया और तुम बोलीं । तुम आती तो मैं बोलता ।" इतना कह कर वे मेरे बालों पर उँगलियों से खेलने लगे और

उसी गुदगुदी में मैं सो गयी । सोते-सोते मेरा सपना टूट गया । कण्णकि ने लम्बी निःश्वास छोड़ी और सिसकियाँ भरने लगी ।

"तुमने यह सपना किस वक्त देखा ?"

"बड़े तड़के जब उषा अपनी पूजा की स्वर्णिम थाली लेकर अपने प्रियतम से मिलने चली थी ।"

"यह तो अच्छा शकुन है ।" देवन्ती ने भविष्य-सूचना दी ।

कोवलन् के रूठ कर चले जाने के बाद माधवी को समुद्र-तट काटने को दौड़ा । जो सुख-स्वप्न सँजो कर वह समुद्र के पास चल पड़ी थी, वह बालू का भीत सिद्ध हुआ । कोवलन् से बिछुड़ने के बाद उसे कौन-सा सुख मिल सकता था ? इसलिए वह भारी कदमों के साथ घर को चल पड़ी ।

कोवलन् के अभाव में उसे घर सूना-सूना लगा । मंच पर बैठी तो विचारों के ताने-बाने बुनने लगी—"कितने सहृदय थे वे ! और अंत में कितने निर्मम निकले । कैसी-कैसी बातें जबान से निकाल दीं ? इन पुरुषों पर विश्वास करना ही नहीं चाहिए । छिः ! मैं भी कैसी ऊटपटांग बातें सोच रही हूँ ? मैं तो भलीभाँति जानती थी कि वे मरीचिका गीत (कानल् वरि) गा रहे हैं और केवल कल्पना-लोक में विचर रहे हैं । उनके स्वभाव से भली-भाँति परिचित होने पर भी उनकी नीयत पर मैंने नाहक शक किया और होड़ाहोड़ी में व्यंग्य भरे 'कानल् वरि' के गीत गाये । उनके दिल को करारी चोट लगी और वे रूठ गये । यदि वे आवेग में कुछ अनर्गल बातें बोल गये तो मुझे चाहिए था कि उन्हें मनाऊँ । पर मैंने क्या किया ? घाव पर नमक छिड़का । क्रोध को शान्त करने के बदले उसे और उभाड़ दिया । मेरी बातों का खरा उत्तर दे कर वे कितनी तेजी से चल पड़े । 'मेरा दिल जानता है, मेरे मन में खोट नहीं ।' कितने नपे-तुले शब्द थे । क्या वे वापस आयेंगे ? कहते हैं कि सुबह का भूला शाम को लौटता है । पर वे सुबह के भूले कहाँ थे, जो शाम को घर लौट आयें ? नहीं, वे जरा शान्त चित्त होकर सोचेंगे तो जरूर लौटेंगे ।"

माधवी ने न कुछ खाया, न पिया । अपने हृदय-मंथन में ही शाम कर दी । उसे निश्चय हो गया कि मेरे मनाये वे वापस नहीं लौटेंगे । उसने उनके नाम एक पत्र लिखा :

"प्रिय, मैं अपनी मनोदशा आपको कैसे समझाऊँ ? यह तो समस्त जीवों को सुख पहुँचाने वाली वसन्त ऋतु है । वसन्त तो स्वेच्छाचारी राजकुमार है । उसके मन में अनेक प्रकार के वसन्त-विचार हैं । सुख भोगना उसका एकमात्र ध्येय है । सुख-प्राप्ति के समय उसे धर्म-अधर्म, कृत्य-अकृत्य का ध्यान नहीं रहता ।

संध्या को चाँद उगता है । वह जन्म से टेढ़ा है और टेढ़ी चाल चल कर सुख भोगने की कला जानता है । वह स्वार्थी दूसरों के साथ न्याय करेगा, इसकी आशा करना वृथा है । ये दोनों मेरे मन और शरीर को अस्वस्थ कर रहे हैं । कामदेव की करतूतों से तो आप भली-भाँति परिचित हैं । प्रेमीजन मिलन-सुख के एक क्षण को भी व्यर्थ गँवाना नहीं चाहते । किसी काम से कुछ क्षणों के लिए बिछुड़ना पड़े और लौटने में जरा भी देर हो जाती, तो वे कितने परेशान होते हैं । आप जैसे रसिकों को यह बताने की जरूरत नहीं है । कामदेव के सुकोमल सुमन-शर में ऐसी शक्ति है कि अनायास प्रेमीजनों के प्राणों को तड़पाये । कठिन से कठिन शस्त्र-प्रयोग की उसे आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी । इतना ही मुझे बताना है, बाकी सब तो आप जानते ही हैं ।"

अपनी सखी वसन्तमाला को बुला कर माधवी ने कहा, "यह पत्र ले जाओ और कोवलन् जहाँ कहीं भी हों, ढूँढ़ कर दे आओ । हाँ, उन्हें साथ लाना न भूलना ।"

कोवलन् माधवी से रूठ कर चला तो सीधे बाजार में गया और निरुद्देश्य भटकता रहा । उसे खाने-पीने की सुध न रही । उस पर क्रोध का भूत जो सवार था, उसने उतरने का नाम ही नहीं लिया ।

"आखिर यह माधवी कितनी विश्वासहीन निकली । मेरे ही सामने उसने किसी पराये की प्रशंसा कर दी । ऐसी औरत का मुँह देखना भी पाप है ।"

विचारों की कड़ी टूटी और माधवी के बदले कण्णकि उसकी स्मृति पर छा गयी ।

"तो क्या कण्णकि के पास चलें ? लेकिन कौन-सा मुँह लेकर उसके पास जाऊँ ? आज तक उसका नाम तक नहीं लिया । अब क्या वह बेसहारे की लाठी बनेगी ? क्यों न बनेगी ? जरूर बनेगी । दुनिया की यही रीति है । सारी दुनिया साथ छोड़ सकती है, पर परिणीता पत्नी नहीं ।"

कोवलन् जब इस नतीजे पर पहुँचा, तब सूरज अपनी किरणें समेट रहा था । सुबह का भूला शाम को घर पहुँच ही गया ।

कण्णकि मानिनी नायिका नहीं बनी । कोवलन् को देखते ही उसने सारा मान, सारा क्रोध छोड़ दिया । स्वागत-सत्कार करने में लग गयी ।

"नाथ, आप आ गये ? कुशल से तो हैं ? चेहरा क्यों उतरा-सा दीखता है ?" पूछते-पूछते कण्णकि गद्‌गद हो गयी ।

कोवलन् से उत्तर देते नहीं बना । "कण्णकि, मुझे माफ कर दो । मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया । एक गणिका के मोह-पाश में फँस कर तुम्हारा जीवन बरबाद कर डाला । आखिर उसने अपना गुण प्रकट कर ही दिया । दूध पिलाने पर भी साँप का गुण कहीं बदल सकता है ?" किसी तरह उसने ये वाक्य पूरे किये ।

"कैसी बातें करते हैं आप ? माधवी को मैं खूब जानती हूँ । वह ऐसी वैसी औरत नहीं है । निकट से देख कर भी आपने उसे समझा नहीं । मैं तो कहूँगी कि सुगृहिणियों को उससे सबक लेना चाहिए । पैसे-वैसे की तंगी हो, तो बताइये, मैं प्रबन्ध करा दूँ ।" —कण्णकि ने सहज भाव से कहा ।

"सारा का सारा दे दिया । फिर भी उसे सन्तोष नहीं ।"

"यह लीजिए ! यह उसी की मरकत-माला है । यह माला उसे देकर सुख से रहिये ।"

"कण्णकि ! इसी बहाने मुझे यहाँ से निकालना चाहती हो ?"

"नहीं, नहीं ! आप यहाँ भी आनन्द से रह सकते हैं । मेरे कहने का मतलब है, आपकी खुशी ही मेरी खुशी है । माधवी के साथ रहने में आपको अधिक सुख का अनुभव होता हो, तो आप वहीं रहें, मुझे कोई आपत्ति नहीं ।"

"फिर वही बात ?"

"बात यह है कि यह मरकत-माला उसकी है । इसी ने हम पति-पत्नी को अलग किया । यह जिसकी है, उसी के पास चली जाए तो……" —कण्णकि का कंठ इतना आर्द्र हो गया कि वह वाक्य पूरा नहीं कर पायी ।

"कण्णकि ! बुरा न मानो । जवानी के जोश में पड़ कर मैंने जितना बुरा किया, वह सब भूल जाओ । तुम्हारी कसम, मैं एक क्षण भी तुमसे बिछुड़ कर नहीं रहूँगा ।"

कोवलन् ने कण्णकि के आँसू पोंछें ।

\+ \+ \+

"वसन्ती, तुम आ गयीं ? क्या कोवलन् मिले ? उन्होंने क्या कहा ?" माधवी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, वह अधीर थी ।

"हाँ, मिले थे ?"

"कहाँ हैं वे ? क्या तुम्हारे साथ नहीं आये ?"

"नहीं, वे अपने घर में हैं यानी कण्णकि के घर में ।"

"तुमने उन्हें मेरा पत्र दिया ?"

"मैंने दिया, पर उन्होंने नहीं लिया ।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि वे अपना मन बदलना नहीं चाहते थे ।"

"तुम जोर दे कर एक बार पढ़वा लेतीं ?"

"जोर तो दिया, पर फायदा नहीं हुआ ।"

"मेरी ओर से कण्णकि से विनती करती कि उन्हें भेज दो ।"

"उसकी जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि कण्णकि स्वयं उनसे तुम्हारे मन की बात कर रही थी । पर वे टस से मस नहीं हुए ।"

"तो समझूँ कि यह मेरे भाग्य का फेर है ?"

"कण्णकि ने यह माला तुम्हें उपहार में भेजी है ।"

"अरे ! यह तो मेरी ही माला है । इसी के कारण तो मुझे कोवलन् मिले थे ।"

"और इसी के कारण तो कोवलन् कण्णकि के हाथ से निकल गये थे ।"

"क्या बकती हो ?"

"बकती नहीं ! इस माला में कोई ऐसा जादू है कि जिसके पास यह रहती है, उसका पति उससे बिछुड़ जाता है । कण्णकि के हाथ में यह गयी और कोवलन् तुम्हारा हो गया था । अब यह तुम्हारे हाथ आयी है, तो कोवलन् कण्णकि के घर बैठा है ।"

"वसन्ती, लगता है कि तुम्हारी बातों में सार है । तब तो यह कहो कि मुझे असह्य विरह वेदना में तड़पते रहना पड़ेगा । नहीं, नहीं ! मैं कण्णकि नहीं हूँ कि विरह को पी सकूँ । मुझसे यह नहीं होगा, मुझसे यह नहीं होगा ।"

माधवी का सिर चकराया । वह बेहोश होकर गिर पड़ी ।

(७)

विरह के बाद मिलन कितना सुखद होता है । आँखों में रात काटने की कला कण्णकि ने इसी विरह से सीखी थी । मिलन में उसका स्वाद चखने को मिला तो वह इतनी खुश हुई, इतनी खुश हुई कि आधी रात के बाद उसकी आँखें लग गयीं और उसने एक ओर करवट ली ।

पर कोवलन् के साथ विरह-मिलन ने आँख-मिचौनी कहाँ खेली थी ? कण्णकि— माधवी— कण्णकि— जब देखो, मिलन का सुख ही उसके भाग्य में लिखा था । उसने विरह का दुख— नहीं, सुख चखा ही नहीं था । मिलन की चरम-सीमा पर पहुँच कर घोड़े बेच कर सोने की ही उसे आदत पड़ी थी । कब रात बीती, कब सुबह हुई और सूरज इतना कैसे चढ़ आया ? —इसका उसे पता ही नहीं था ।

पर आज उसे नींद ही नहीं आ रही थी । कण्णकि को सुला कर वह जाग रहा था । न जाने उसके मन में कैसे-कैसे विचार करवटें लेते रहें । भविष्य की चिन्ता उसे खाये जा रही थी । एक के बाद एक करके विचार-लहरियाँ उसके मस्तिष्क में उठ रही थीं और आपस में टकरा कर टूट-फूट रही थीं ।

"अजी, छोड़िये मेरा पैर, यह आप क्या कर रहे हैं ? कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ? ......बड़े ढीठ हैं, मैं रो पड़ूँगी ।" कण्णकि के होंठों पर लज्जा की हँसी खिली ।

कण्णकि के होंठों पर हास्य-रूदन की धूप-छाँह देख कर कोवलन् ने पुकारा, "कण्णकि !"

कण्णकि जाग पड़ी और आँखे मलते हुए बोली, "अरे, मैं तो सपना देख रही थी ।"

"सपना ? कौन-सा सपना ?"

"क्या बताऊँ ? हम दोनों कहीं जा रहे हैं । न जाने कहाँ ? पर लगा कि हम सुदूर दक्षिण जा रहे हैं और पैदल जा रहे हैं । न कोई सवारी, न कोई गाड़ी । कितने ही नगर और गाँव हमारे पीछे छूट रहे हैं । नदी-नाले पार कर रहे हैं और ऊबड़-खाबड़ जंगली रास्तों से गुजर रहे हैं । तरह-तरह के लोग हमसे मिलते हैं । आप आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे । आपके कदमों से कदम मिलाती बढ़ रही हूँ । आप मुड़कर मुझे देखते हैं और कहते हैं, कण्णकि, तुम सीताजी जैसी दीख रही हो ।"

मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ और पूछती हूँ, "अरे, हमारे लक्ष्मण भैया कहाँ पिछड़े रह गये ?"

"वह तो पानी लाने गया है ।"

"तो जरा ठहरिये, उन्हें आने दीजिये । वे तो छोटे हैं, थक गये होंगे ।"

आप मेरे पाँव देखते हैं और पूछते हैं, "तुम्हारे पाँव क्या कोई लाल कमल तो नहीं हैं ?"

मैं झुककर पैरों को देखती हूँ तो वे रक्त-वर्ण के नजर आये । आप कहते हैं, "तुम्हें तो चलने की ही आदत नहीं है । जरा बैठो, हम थोड़ा आराम कर लें ।"

"अच्छा, तो यह कहिये कि मेरे बहाने आप भी अपनी थकावट दूर करना चाहते हैं ।" यह कह कर मैं बैठ जाती हूँ और आप भी बैठ जाते हैं ।

"उस निर्जन वन में, जहाँ हम बैठते हैं, एक कुटिया दिखाई पड़ती है । उस सुरम्य वातावरण का आनन्द लूटते हुए आप मेरे पैर दबाने लगते हैं । इसी समय शबरी जैसी एक बुढ़िया कुटिया से बाहर आती है और मैं लज्जा से गड़ जाती हूँ । आगे की बात तो आप जानते ही हैं ।"

इतना सुनना था कि कोवलन् के लिए एक रास्ता खुल गया । अब तक विचारों की जो कड़ी टूटती-टूटती जा रही थी, अब मिल गयी और पकड़ में आ गयी । बोला, "मुझे नींद ही नहीं आ रही थी ।"

"शायद इसलिए कि माधवी की याद सता रही थी ।"

"मुझे शर्मिन्दा न करो, कण्णकि ! सच पूछो तो दिल खोल कर तुम से एक बात कहना चाहता था पर संकोच के कारण कह नहीं पाता हूँ ।"

"पति-पत्नी में छिपाव-दुराव या संकोच करने की क्या बात है ? जो कहना हो, निस्संकोच कहिये न ।"

"बात यह है कि व्यापार में मुझे इतना घाटा हो गया है कि मेरे लिए अब उठना मुश्किल है । माधवी के मोह ने मुझे बरबाद कर डाला । नये सिरे से व्यापार शुरू करने के लिए तो पूँजी चाहिए । उसके लिए मैं कहाँ जाऊँ और किसके आगे हाथ फैलाऊँ ? मन में आता है कि रातो ही रात कहीं भाग जाऊँ ।"

"आप भी कैसी बातें करते हैं ? पूँजी की व्यवस्था मैं किये देती हूँ । आप फिर से निश्चिन्त होकर व्यापार शुरू कीजिये ।"

"कैसे कर सकोगी ?"

"देखिये, मेरे ये नूपुर । आखिर ये किस काम के हैं ? इन्हें बेच डालिये न ?"

"तुम्हारे लिए तो ये जान से भी प्यारे हैं ।"

"तो क्या हुआ ? ऐसी चीजें तो वक्त पर काम आने के लिए ही होती हैं । आज ये बिक जाएँ, तो कल भगवान् ने चाहा तो इससे भी बेहतर गहने मिल जाएँगे ।"

"अगर तुम्हारी बात मान भी जाऊँ, तो इस शहर में गिरे हुए व्यापार को उठाना मेरे लिए मुश्किल हो जाएगा । जहाँ मेरी इतनी प्रतिष्ठा थी, वहाँ पग-पग पर मुझे सिर झुकाना पड़ेगा और जितने मुँह उतनी बातें सुननी पड़ेंगी ।"

"आप ठीक कह रहे हैं ।"

"इसलिए तुम मानो तो एक काम करूँ । यहाँ से मैं किसी दूर के शहर में चला जाऊँगा और......"

"आगे की बात अपनी गलती सुधारने के बाद कहिये, तो मैं सुनूँ ।"
"गलती ? कौन-सी गलती ?"

"'चला जाऊँगा' नहीं, 'चले जाएँगे' कहिये तो ठीक रहेगा ।"

"तुम्हारे कहने का क्या मतलब है ?" जानते हुए भी अनजान बनकर कोवलन् ने पूछा ।

"मैं भी आपके साथ चलूँगी ।"

"हठ न करो । रास्ते में न जाने, कितनी विपत्तियों का सामना करना पड़े ।"

"विपत्तियों के पहाड़, एक के बाद एक टूट पड़ें तो भी मुझे मंजूर है । मैं सामना कर लूँगी, सब कष्ट सह लूँगी । विछोह की वेदना के सामने वे नगण्य हैं ।"

"मैं कैसे तुम्हें समझाऊँ ?"

"समझाने की कोई जरूरत नहीं । सीताजी का आदर्श मेरे सामने है । अतः आप से इतनी ही प्रार्थना है कि अपनी सहचरी बनने का सौभाग्य मात्र मुझे प्रदान कीजिये ।"

कण्णकि की इन बातों से कोवलन् गद्गद हो गया । बोला, "भाग्य के बिछुड़े हम अभी मिले हैं । संयोग को वियोग में बदल कर तुम्हें तड़पाने की बात भगवान् भी नहीं सोच सकते ।"

"इसलिए कि भगवान् भुक्तभोगी हैं ।"

कण्णकि की बात से प्रभावित होकर कोवलन् सोचने लगा कि मैं भी कितना बड़ा अभागा हूँ कि कण्णकि के साहचर्य से इतने दिन वंचित रह गया् । पूछा, "प्रस्थान के लिए तुम कब तक तैयार हो सकती हो ?"

"यह कैसा प्रश्न है ? मैं तो कभी की तैयार हो चुकी हूँ । हाँ, आप ने तो यह नहीं बताया कि कहाँ जाने का विचार है ।"

"मदुरा ।"

"मदुरा ! नाम ही कितना मधुर है ।"

"यह पाण्डिय राजाओं की राजधानी है और अच्छा व्यापार-केन्द्र भी है । यहाँ की पथवीथी की बड़ी ख्याति है ।"

"मीनाक्षी-सुन्दरेश्वर का मन्दिर भी तो है । चलिये, हम अभी चले चलेंगे ।"

"इतनी जल्दी क्यों ?"

"इसलिए कि भोर होने से पहले हम नगर के पार हो जाएँ और परिचित लोगों का मुँह देखना न पड़े ।"

कोवलन् ने मन-ही-मन कण्णकि की दाद दी कि उसके मुख से अपने मन की बात निकली ।

सुबह की ठंडी-ठंडी हवा के स्पर्श से स्फूर्ति पाकर दोनों घर से चल पड़े । नगर की वीथियाँ तय कीं और संगम-तट पहुँचे तो देखा कि समुद्रराज कावेरी को अपने बाहु-पाश में जकड़े मौज उड़ा रहा है ।

कोवलन् और कण्णकि को लम्बे अरसे के बाद युगल-रूप में देख कर वह इतना आनन्दित हुआ कि पानी के छींटे दे कर उन्हें आशीषें दीं । कावेरी और समुद्रराज को दोनों ने दण्डवत किया और अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदा ली ।

चिड़ियों ने मंगल-गान गाया, उषा ने आरती उतारी । कोवलन्-कण्णकि की मदुरा-यात्रा शुरू हो गयी । 'पुकार' नगरी की पुकार उनके कानों में नहीं पड़ी ।

(८)

"माधवी ! तुम्हें क्या हो गया कि हमेशा शोक में डूबी रहती हो ? बच्ची का ख्याल नहीं करती । जानती हो वह क्या कहती है ? "माँ खोयी-खोयी सी रहती है, मुझे उनके निकट जाने तक से डर लगता है ।" बच्ची के मन में इस तरह की भावना भरा तो उसके भविष्य का क्या होगा ?" वसन्तमाला ने तीखे स्वर में पूछा ।

"क्या करूँ, वसन्तमाला ? जो अमूल्य रत्न हाथ से चला गया, उसकी याद रह-रह कर मुझे सताती है । मैं अपने मन को काबू में नहीं कर पाती हूँ ।"

"मणिमेखला के लिए तुम्हें सब कुछ सहना पड़ेगा । वे तुम्हें छोड़ गये, तो तुम्हारा मन बहलाने के लिए मणिमेखला के रूप में एक बहुमूल्य रत्न दे गये हैं । उसका दिल रखने के लिए अपने दिल की व्यथा को तुम्हें छिपाना ही होगा ।"

"कोशिश तो करती हूँ । यह न समझो कि मैं अपनी लड़की की तारीफ कर रही हूँ । इस छोटी-सी उम्र में उसकी विलक्षण प्रतिभा को देखोगी तो कहोगी कि मणिमेखला बड़ी होनहार लड़की है ।"

"क्या मैं नहीं जानती कि तुम्हें बताने की जरूरत पड़े । एक दिन मैंने बातों के सिलसिले में उससे कहा कि आखिर तुम्हारे पिताजी बड़े निर्मम निकले । तुम्हें और तुम्हारी माँ को बेसहारे, अनाथ छोड़ जाना कहाँ का न्याय है ? झट से उसने दो टूक उत्तर दिया कि तुम मेरे पिताजी को नहीं जानतीं । सच पूछो, तो वे त्याग का पाठ पढ़ा कर गये हैं । ममता पालें तो बिछुड़ने पर दुख होगा । निर्ममता बिछोह के दुख से पिंड छुड़ाती है । कहो, क्या ये छोटों की बातें हैं ?"

"लोग तो यही कहेंगे कि 'छोटे मुँह, बड़ी बातें' हैं । एक दिन वह मुझसे कह रही थी कि किसी अच्छे भले काम के लिए मुझे त्यागना पड़े, तो क्या तुम आँसू बहाओगी ? मैं क्या उत्तर देती ? सोच में पड़ गयी । तब उसने कहा, अवश्य तुम आँसू बहाओ, मगर वे प्रसन्नता के आँसू हों । सुन कर मैं गद्गद हो गयी ।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि वह काव्य-नायिका बन कर चमकेगी ।"

"इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि मणिमेखला को किसी बौद्ध संघ में भर्ती करा दूँ, ताकि उसे सुख-दुख की आँख-मिचौनी खेलनी नहीं पड़े ।" माधवी की आँखों ने मानो सुदूर भविष्य की ओर देखा ।

"मुझे तुम्हारी ऐसी बातें पसन्द नहीं हैं । तुम तो जो मन में आये, बक देती हो ।" वसन्तमाला ने क्रोध भरे स्वर में कहा ।

"अन्तरात्मा की बात उभर आती है तो मैं क्या करूँ ?"

माधवी यह कह ही रही थी कि बाहर से मणिमेखला की आवाज आयी, "माँ, माँ ! तुम्हें खोजते हुए कोई आये हैं ।"

माधवी और वसन्तमाला बाहरी बैठक में आयीं तो देखा कि कौशिकन् खड़े हैं । उन्हें देखते ही माधवी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, "कौशिक जी कहिये ! तीर्थाटन से कब लौटे ? कहाँ-कहाँ गये थे ? कहीं वे मिले थे क्या ?"

जिज्ञासा ने इतना जोर मारा कि माधवी को उन्हें बैठने को आसन देने तक का ख्याल नहीं रहा ।

वसन्तमाला ने टोका, "पहले उन्हें आराम से बैठने दो ।"

माधवी लज्जित हो गयी । "मैं भी कितनी स्वार्थी हूँ कि अपने काम से काम रखती हूँ और दूसरों को भूल जाती हूँ । क्षमा कीजिये और आराम से बैठ कर सारा हाल कहिये ।"

कौशिकन् कावेरी पूम्पट्टिनम् के ही निवासी थे । उन्हें तीर्थाटन का बड़ा शौक था । जब जी करता, तीर्थाटन के लिए चल पड़ते थे और महीनों नहीं लौटते थे ।

जिस दिन कोवलन् और कण्णकि ने मदुरा के लिए प्रस्थान किया, उसी दिन सारे शहर में बात फैल गयी कि दोनों बिना किसी के कहे-सुने कहीं चले गये हैं । इस बात को लेकर जितने मुँह, उतनी बातें भी हुईं ।

माधवी के शोक की सीमा नहीं रही । अपने भाग्य को कोसने लगी । भले ही कोवलन् कण्णकि के साथ रहें, पर कावेरी पूम्पट्टिनम् में ही रहते, तो सम्भव था कि यदा-कदा उनका दर्शन-लाभ होता । अब उससे भी तो वह वंचित हो गयी ।

कोवलन् को मना कर लाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति ढूँढ़ा तो कौशिक याद आये । उन्हें बुला कर कहा, "न जाने, मेरे कोवलन् कहाँ चले गये हैं । आप अभी तीर्थाटन के लिए चले चलियेगा और कोवलन् जहाँ कहीं भी मिलें, उन्हें समझा कर इधर बुला लाइयेगा । राह-खर्च के लिए यह माला लीजिये और किसी के हाथ बेच कर पैसा जुटा लीजिये ।"

वसन्तमाला को दिल्लगी सूझी, बोली, "किसी के हाथ इसे बेचना ही है तो विवाहित दंपति के हाथ न बेचिये । इसमें एक ऐसी शक्ति है कि प्रेमी युगल को बिछुड़ा दे और विरह-कुंड में डाल दे ।"

"ऐसी बात है तो मैं पाप का भागी नहीं बनूँगा । मैं तीर्थाटन इसीलिए कर रहा हूँ कि जन्म-जन्मान्तर के पाप कट जाएँ ।"

"राह खर्च के लिए क्या करेंगे ?"

"तुम उसकी चिन्ता क्यों करो ? आखिर भगवान् किसलिए हैं ? इस माला को मैं अपने पास ही रख लूँगा तो तुम लोगों को कोई एतराज तो नहीं होगा न ?"

"हमें एतराज क्या हो सकता है ? पर आपको अपनी पत्नी से क्या रार है कि तकरार मोल लेना चाहते हैं ।"

"तकरार मैं क्यों नाहक मोल लूँगा । मैं तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी ठहरा । यह माला मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती । इसे मैं अपने ही पास रखूँ तो पति-पत्नियों को लड़ाने की इसकी ताकत चली जाएगी । पाप के बदले मुझे पुण्य मिलेगा ।" कौशिकन् यह कह कर वहाँ से चल पड़े ।

कौशिकन् आज ही तीर्थाटन से लौटे थे । बोले, मैं दक्षिण के अनेक तीर्थों में घूम आया हूँ । मदुरा नगरी के निकट कोवलन् मिले थे । सूरत-शकल से वे इतने बदल गये थे कि मैं उन्हें पहचान ही नहीं सका । धूप और वर्षा में पैदल चलने की उन्हें आदत ही कहाँ थी ? साथ में कण्णकि होती तो शायद आसानी से पहचान लेता । बड़े सबेरे एक तालाब के किनारे वे मिले थे........"

"........तो क्या आप उनसे बिना बात किये ही चले आये ?"

"नहीं, उनसे बात करके ही आया । उन्हें पहचानने का एक उपाय किया । तालाब के किनारे एक माधवी लता थी । उसमें फूल नहीं लगे थे । मैं उसे लक्ष्य कर ऊँचे स्वर में बोला, ताकि कोवलन् भी सुन सकें । "ऐ री माधवी लता ! तुम तो विरह की मारी माधवी नहीं हो, जिसने कोवलन् के विछोह से व्यथित होकर फूल धारण करना छोड़ दिया । तुम्हें किस बात का दुख है कि माधवी की तरह तुम भी फूलों से घृणा करने लगी ।"

"सुनकर कोवलन् ठिठक कर खड़ा हो गया । मुझे निश्चय हो गया कि हो न हो, यह कोवलन् है ।" वह अपना कौतूहल संवरण नहीं कर सका । मेरे निकट आकर पूछा, "आप कौन हैं, जो कोवलन्-माधवी की बात कर रहे हैं ?" मैंने कहा, "क्या मैं जान सकता हूँ कि आप कौन हैं, जो मुझसे माधवी-कोवलन् की बात पूछ रहे हैं ?"

कोवलन् अपने को छिपा नहीं सका । बोला, "सचमुच मैं कोवलन् ही हूँ । मेरी माधवी कैसी है ? मैंने भावावेश में आ कर उसके साथ अन्याय कर दिया ।" अब पछताने से क्या होता है ?

"क्या नहीं होता ? वापस चलिये और माधवी के साथ आनन्द से रहिये ।" मैंने कहा ।

"अब यह सम्भव नहीं है । आगे बढ़े हुए पैर अब पीछे नहीं हट सकते । माधवी से मेरी ओर से माफी माँग लीजिएगा" —उसके हर शब्द में दृढ़ता थी ।

"मैंने उस पर काबू पाने के विचार से एक दूसरे अस्त्र का इस प्रकार प्रयोग किया, यानी तुम्हारी दी हुई मरकत-माला उसे दिखायी" और कहा—"देखिये, सीताजी ने जैसे हनुमानजी के हाथ श्रीरामचन्द्र के लिए चूड़ामणि भेजी थी, वैसे ही माधवी ने आपके लिए मेरे हाथ यह मरकत-माला भेजी है ।"

देख कर वह भड़क उठा और बोला, "इसी माला के कारण मैं दो-दो विवाह करके भी किसी को सुख नहीं पहुँचा सका । दोनों को विरह की आग में झोंक दिया । अब मैं इसे अपने हाथ से छुऊँगा तक नहीं ।"

इतना कह कर कोवलन् वहाँ से तेजी के साथ चला गया और मैं हाथ मलता रह गया ।

कौशिकन् ने बात पूरी की । माधवी ने लम्बी आह भरी । उसके मुँह से सिर्फ एक ही सवाल निकला, "अब क्या होगा ?"

(६)

सूरज सिर पर आ गया था । कोवलन् उस छायावन के वृक्ष की जड़ को सिर का तकिया बनाये लेटा था । कण्णकि उसके पैर दबा कर थकान उतार रही थी और रास्ते में जो कुछ देखा, उसका बयान भी करती जा रही थी ।

"भगवान भी कितने दयालु हैं कि स्थल-स्थल पर रमणीय दृश्य उपस्थित कर हमें आनन्द में नहला दिया । रास्ते में कितने गाँव आये और गये, कैसे-कैसे लोग मिले । जहाँ देखो, हरियाली ही हरियाली । मैं तो निहाल हो गयी ।"

"तरह-तरह की बातें भी तो सुनने को मिलीं । किसी ने हमें पति-पत्नी के रूप में देखा, किसी ने भाई-बहन के रूप में । किसी ने मुझे निर्मम कहा, किसी ने तुम्हें दयावन्ती कहा ।"

"जिसने जैसा देखा, वैसा कहा । लेकिन उसकी तह में वात्सल्य और प्रेम ही कूट-कूट कर भरे थे ।"

"हाँ, देखने-समझने की आँखे चाहिए । गायों का एक झुंड देखा तो तुम आगे चलना बन्द कर उसे ताकती खड़ी रह गयी ।"

"हाँ, उनके साथ जो नन्हें बछड़े थे, वे कैसी उछल-कूद कर रहे थे । कभी माँ के आगे दौड़ते और कभी पीछे रह जाते । माँ का दूध पीने की इच्छा हुई तो कुछ बछड़ों ने माँ का रास्ता रोक लिया और मजे से दूध पीते हुए माँ के थनों पर ऐसा सिर मारने लगे कि गाय के पिछले पैर उखड़ने लग गये । फिर भी उन गायों ने कितने प्रेम और वात्सल्य के साथ अपनी जीभ उन पर फेरी थी ।"

"हाँ, चिड़ियाँ भी अपने बच्चों को कितने प्रेम से दाना खिला रही थीं ।"

"एक जगह एक चिड़ा अपनी मादा को घोंसला बनाने में कैसी सहायता पहुँचा रहा था, आपने देखा ?"

"क्यों नहीं देखा ? उसमें तुम्हारा हृदय प्रतिबिंबित था ।"

"एक तालाब में मछलियाँ तैर रही थीं, माता-मछली को घेरे हुए । माता की आँखों के इशारे पर वे मुड़ीं तो मुझे आश्चर्य हुआ ।"

"कहते हैं माँ के दृष्टिपात से ही छोटी मछलियाँ बड़ी होती हैं ।"

"हम भी तो मीनाक्षी की कृपादृष्टि के लिए ही तो चल पड़े हैं ।"

"गाँव पार कर वन-मार्ग पर आये तो क्या देखा ?"

"उफ् ! कितना बड़ा अजगर था । मैं तो डर के मारे चीख भी नहीं पायी ।"

"तुम तो मेरी बाँहों में आ गयीं और मुझे ऐसा कस कर पकड़ लिया कि अजगर की पकड़ भी उसके सामने कुछ नहीं । मैं तो उस अजगर को मन-ही-मन धन्यवाद दे रहा था ।"

'जंगल में मंगल' देखना एक कला है । आप उसमें सिद्धहस्त हैं । कहिये, "हिरनियाँ हमें देख कर खड़ी क्यों हो गयीं ?"

"इसलिए कि तुम्हारी आँखें उनकी आँखों से होड़ लगाती थीं । तुम्हें अपनी आत्मीया मान कर वे चौकड़ियाँ भरना भूल गयीं । उन्हें देखने के बहाने तुम बड़ी देर वहीं खड़ी हो गयी, तो मैंने समझा कि तुम थक गयी हो ।"

"मैं थकी कहाँ थी ? मैं तो और दो चार कोस चलने को तैयार थी ।"

"ऐसी बात थी तो तुमने यह सवाल क्यों किया कि मदुरा नगरी अब कितनी दूर है ?"

"आपके कहने का मतलब हुआ कि जिज्ञासा उचित नहीं ।"

"जिज्ञासा एक नियामत है । पर बात यह है कि इस छायावन में आने के बाद तुम्हारे पैर उठे नहीं ।"

"अपने दिल को टटोलिये, फिर कहिये, आपके पैर नहीं उठे या मेरे ?"

"मानता हूँ, मेरे ही पैर नहीं उठे । तुम्हारी कोमलता का ख्याल कर वे रो पड़े ।"

"मैं तो कहूँगी कि यह एक बहाना है ।"

"अच्छा भई, मान लिया कि उस बहाने मैंने खूब आराम तो कर लिया । अब तुम्हारी बारी है । तुम लेट जाओ और मैं तुम्हारे पैर......" कोवलन् उठ बैठा और कण्णकि के पैर दबाने लग गया ।

"अजी, छोड़िये न ! कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?" कण्णकि की लजीली आँखें एक क्षण में उस छायावन के चारों ओर घूम गयीं । उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा । पास ही एक कुटिया थी और उसके द्वार पर एक बुढ़िया खड़ी थी । कण्णकि सलज्ज आँखों से उस ओर इशारा कर बोली, "उधर देखिये, मेरे सपनों की बुढ़िया खड़ी है । उसमें और इसमें कोई फर्क नहीं है । सूरत-शकल में भी वही ! न जाने, वह हमें कितनी देर से खड़ी-खड़ी देख रही है ।"

कण्णकि ने जिस ओर इशारा किया था, उस ओर देखा तो एक वृद्धा तपस्विनी मन्द मुस्कान के साथ खड़ी थी । कोवलन् ने कण्णकि से कहा,

'कैसा आश्चर्य ! सचमुच तुम्हारा सपना साकार हो गया है । उठो, उनके पास जा कर मदुरा का रास्ता पूछें ।"

दोनों उठे और उनके निकट जा कर दोनों ने हाथ जोड़े । उन्हें आशीष देते हुए वृद्धा माता ने उनका परिचय पूछा ।

"मेरा नाम है कोवलन् । मैं कावेरी पूम्पट्टिनम् का एक वणिक-पुत्र हूँ और यह मेरी धर्मपत्नी । नाम है—कण्णकि । व्यापार में बहुत अधिक घाटा हो जाने से हम अपना जन्म स्थान छोड़ कर मदुरा नगरी जा रहे हैं । विचार है कि वहाँ नये सिरे से व्यापार शुरू करेंगे और सिर उठाने का प्रयत्न करेंगे ।"

सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुम लोग मदुरा नगरी जा रहे हो । मेरा भी विचार वहाँ जाने का है । पर इस वृद्धावस्था में अकेले चलने की हिम्मत मुझमें नहीं है । उपयुक्त सहयात्री के न मिलने से यात्रा टलती जा रही है । क्या तुम लोग मुझे अपने साथ ले चलोगे ?"

"क्यों नहीं ? सहर्ष ले चलेंगे । आप जैसे लोग साथ रहें तो रास्ता आसानी से कट जायेगा । क्या आप जानती हैं, मदुरा जाने का रास्ता ।"

"रास्ता ज़बान पर है । जानना क्या कठिन है ? कितने ही लोग रास्ते में मिल जाएँगे । उनसे रास्ता पूछ लेंगे ।" बुढ़िया ने कहा ।

वह बुढ़िया बड़ी तपस्विनी थी । नाम था कौंती माई । जैन धर्मावलम्बी साध्वी थी और परमेष्ठी भगवान् अर्हत् के ध्यान में लगी रहती थी । अर्हत् की पूजा के साथ-साथ जनसेवा भी करती थी । उनकी सेवा से प्रभावित हो कर लोगों ने उस स्थान का नाम 'कौंति पल्लि' रखा था । प्रकृति-निर्मित उस शान्त वातावरण में कोवलन्-कण्णकि को ऐसी स्फूर्ति मिली कि यात्रा का श्रम उन्हें प्रतीत ही नहीं हुआ ।

दूसरे दिन बड़े सबेरे यात्रा फिर से शुरू हुई । दो के बदले अब तीन यात्री हो गये और प्रतिदिन दस कोस चलने लगे । चलते-चलते वे श्रीरंगम पहुँचे । प्रियतम से मिलने को आतुर होकर वहाँ कावेरी नदी बह रही थी । उसकी उतावली भरी गति देख कर कण्णकि ने कहाँ "देखिये, पावन सलिला कावेरी में प्रेमिकाओं की मनोदशा पढ़िये ।"

"सुन कर कोवलन् ने कण्णकि का हाथ कस कर पकड़ लिया, मानो कह रहा हो कि आजीवन मैं तुम्हारा हाथ नहीं छोड़ूँगा ।"

वहाँ से उरैयूर होते हुए वे दक्षिण दिशा में बढ़ रहे थे । रास्ते में एक ब्राह्मण मिला, जो माङ्काडु नाम के गाँव का निवासी था । वह दक्षिण की तीर्थ-यात्रा पूरी कर श्रीरंगनाथ के दर्शन के लिए जा रहा था । उससे पूछ कर मदुरा जाने का सुगम रास्ता मालूम कर लिया ।

गरमी अधिक पड़ने से एक दोपहर को वे एक कोट्रवै (दुर्गा) के मन्दिर में ठहरे । सूरज जब सिर पर था, वहाँ वनवासी भील आये और दुर्गा की पूजा बड़ी धूम-धाम से करने लगे । उनकी श्रद्धा-भक्ति देख कर कण्णकि पुलकित हुई । उनके नाच-गान में ये तीनों धूप की गरमी भी भूल गये ।

एक भीलनी दूसरी भीलनी से कह रही थी, "उस लड़की को देखा तुमने ? वाह बड़ी सुन्दर तरुणी है । लगता है कि हमारे कोट्रवै (दुर्गा) मैया ही शरीर धारण कर हमारे सामने खड़ी है । कैसी शान्त मूर्ति है ।"

शाम को सूरज की गरमी मन्द पड़ने पर कोवलन् और कण्णकि को लेकर कौंती माई आगे चल पड़ी । उन्हें इस बात का सन्तोष था कि निर्विघ्न यात्रा समाप्त हुई और वे पांडिय राजा की सीमा पर पहुँच गये हैं । कौंती बोलीं, "अब हमें किसी बात का डर नहीं है । हम पांडिय प्रदेश में आ गये हैं । हम सुबह और शाम अपनी यात्रा जारी रख सकते हैं और जितनी जल्दी हो सके मदुरा नगरी पहुँच सकते हैं ।"

मदुरा नगरी निकट ही है, इस बात का पता चलने पर पैरों को मानो अधिक बल मिला । चौथे दिन उनका पड़ाव मदुरा नगरी से सटी एक बस्ती में पड़ा । रात की थकान उतार कर कोवलन् सबेरे नहाने-धोने तालाब के किनारे गया जहाँ कौशिकन् से उसकी भेंट हुई थी ।

पर हाँ, कौशिकन् उसके निश्चय में परिवर्तन नहीं ला सका ।

माधवी के प्रति जो विचार लेकर वह बिछुड़ा था, वह एकदम धुल गया था । "माधवी महान् है । पति-परायण नारियाँ जैसे अपने पुरुष को सुख पहुँचाने के ध्येय में अपने को खपा लेती हैं, वैसे ही व्यवहारों से उसने मुझे प्रसन्न रखने का सफल प्रयत्न किया । मैं नराधम उसका दिल तोड़ कर चला आया । सिर्फ उसी को क्यों, कण्णकि को भी मैंने कितनी दुस्सह यातनाएँ दीं । पति को देवता मान कर पूजने वाली होती हैं भारत की नारियाँ । उनके साथ खिलवाड़ करने का मैंने महापाप किया है । न जाने इसका कौन सा फल मुझे मिलेगा ?" पश्चात्ताप की आग में अपने को तपाता हुआ वह

अपने निवास को लौटा तो देखा कि कौंती माई जप-तप से निवृत्त हो कर बाहर आकर बैठी हैं और कोई ब्राह्मण उनसे बातें कर रहा है ।

निकट गया तो पता चला कि वह पूर्व-परिचित माडलन है ।

(१०)

"अरे भाई माडलन ! तुम इधर कहाँ आये ?"

"एक काम से मदुरापुरी आया था और अब अपने गाँव को लौट रहा हूँ । इधर से गुज़र रहा था तो माताजी ने मुझे बुला कर कुछ पूछताछ की । इनके साथ बातें करते हुए मुझे मालूम हुआ कि तुम भी आये हो और यह भी सुना कि तुम्हें व्यापार में बड़ा घाटा उठाना पड़ गया है और नये सिरे से व्यापार शुरू करने के लिए मदुरा जा रहे हो । कहो, बात क्या है ?"

"बात केवल इतनी है कि भगवान् जैसे चाहता है, वैसे नचाता है । यह बताओ मदुरा कैसा शहर है ?"

"बड़ा ही सुन्दर नगर है । नगर-निर्माण-कला का उत्तम नमूना देखना चाहो तो यहीं देख सकते हो । मन्दिर को केन्द्र विन्दु बना कर चौकोण वीथियाँ बनी हैं । एक के बाद एक करके वीथियाँ ऐसी निर्मित की गयी हैं, मानो तालाब पर बनी चौकोर सीढ़ियाँ हों । बच्चे भी बिना रास्ता भूले एक जगह से दूसरी जगह आ-जा सकते हैं, हाट-बाजार की भी व्यवस्था ऐसी है कि अभीप्सित चीजें खरीदने के लिए इधर से उधर भटकना नहीं पड़े । बढ़ई, लोहार, सोनार, जैसे कर्मचारियों के लिए अलग-अलग गलियों का प्रबन्ध है । मैं शब्दों में उसकी सुन्दरता चित्रित नहीं कर पाता । जाकर देखोगे तो पता चलेगा ।"

"सो तो जाऊँगा ही । व्यापार के लिए कैसा स्थान है ?"

"सच पूछो तो तुम्हारे जैसे अनुभवी व्यापारी यहाँ खूब चमक सकते हैं । हिम्मत कर कूद पड़ो, आखिर भगवान् मालिक हैं ।" माडलन ने कहा ।

"हाँ, उसी के इशारे से तो हवा भी चलती है ।" कौंती माई ने हामी भरी ।

"माताजी ! मानता हूँ, मित्र के मुँह के सामने मित्र की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए । फिर भी मैं अपना लोभ संवरण नहीं कर पाता । साहित्य में वीर कई प्रकार के होते हैं । युद्धवीर, दयावीर, दानवीर— इस प्रकार कितने नाम गिनें । मैं कहूँगा कि उन सबका समुच्चय यह कोवलन् है ।"

"अरे भाई, व्यर्थ काँटों में मत घसीटो ।"

"भाई ! माधवी के गर्भ से इसके एक लड़की हुई तो इसने अपना सारा खजाना खोल दिया । इसकी दानवीरता की लोग प्रशंसा कर ही रहे थे कि अपनी दयावीरता दिखाने का इसे मौका मिल गया । उस समय यह केवल दयावीर ही नहीं, युद्धवीर भी निकला । एक मदमस्त हाथी वीथियों में निकल पड़ा । लोग अपने प्राण बचा कर इधर-इधर भागने लगे । एक वृद्ध ब्राह्मण, जो इसी के घर दान लेने जा रहा था, न इधर जा सका और न उधर । लड़खड़ा कर भूमि पर गिर पड़ा । हाथी उसे अपने पैरों के नीचे मसलने वाला ही था कि कोवलन् पलक झपकते ही मस्त हाथी के मस्तक पर चढ़ बैठा और अपनी जान पर खेल कर उसे अपने वश में कर लिया । ब्राह्मण बाल-बाल बच गया ।"

"अच्छा ! एक साथ तीनों प्रकार की वीरता इसने दिखायी है ?"

"हाँ, हमारे कावेरी पूम्पट्टिनम् की नगर-रचना भी देखते ही बनती है । मरुवूरप्पाक्कम् और पट्टिनप्पाक्कम्—ये दोनों शहर की बड़ी बस्तियाँ हैं । 'नालंगाडी' नाम से एक बड़ा हाट-बाजार है । इन्हें मिलाने के लिए एक बड़ा चौराहा बना है । चौराहे के बीच एक बड़ा चबूतरा है । उस पर एक भयंकर दैत्याकार मूर्ति खड़ी की गयी है । कहते हैं कि कोई गलत काम करेगा, तो उसे वह मूर्ति निगल जायेगी । उसकी ओर आँख उठा कर देखने में भी लोग डरते हैं । उसके सामने से गुजरते लोग आँखें फेर लेते हैं ।"

"एक बार एक आदमी ने क्या किया, मालूम है ? एक पतिपरायण नारी पर दोषारोपण किया और गवाही भी झूठी दी । लोग उसे पकड़ कर मूर्ति के चबूतरे तक ले गये । वह इतना भयभीत हुआ कि उसकी मुँदी आखें फिर नहीं खुलीं । वह वहीं ढेर हो गया ।"

"अच्छा ! न्याय का अच्छा रास्ता निकाला है ।"

"उस आदमी का परिवार बड़ा था । नन्हें-नन्हें बच्चे थे, वृद्ध माता-पिता थे और रोगशय्या पकड़े पत्नी थी । तिस पर दरिद्रता की जो मार थी, सो

अलग । कोवलन् को इस बात का पता चला तो उस कुटुंब के संरक्षण के लिए इतना धन दिया कि आज वह कुटुंब दूधों नहाता है । पर यह......"
—माडलन अपना वाक्य पूरा नहीं कर सका, उसका गला रुँध गया ।

इसे देख कर कौंती माई को लगा कि हम कोवलन्-कण्णकि का और अधिक साथ दें तो सम्भव है कि हमारे मन में भी ममता के बीज पड़ जाएँ । अतः हमें इनसे विलग हो जाना चाहिए ।

उसी समय एक अहीरिन मट्ठे का मटका सिर पर लिये उधर से गुज़री । कौंती माई के मन में एक विचार कौंध गया । अहीरिन को पास बुलाने को उठी । तब तक स्वयं अहीरिन उनके पास आ गयी । सिर पर का मटका नीचे उतार कर रखा और कौंती माई को दण्डवत् करते हुए कहा, "माई ! आज मेरा बड़ा भाग्य है कि सबेरे-सबेरे आपके दर्शन कर सकी । अभी मेरा दही का सौदा शुरू नहीं हुआ है । आज्ञा दीजिये, पहले आपकी कुछ सेवा करूँ और बाद को अपने व्यापार का काम शुरू करूँ ।"

"अजी, मैंने तो देखा-सुना है, लोग पहले अपने घर में दिया जलाते हैं और बाद को कुछ तेल बचा हो, तो मन्दिरों में जलाते हैं । तुम्हारा सौदा तो अभी किसी से पटा नहीं है । उससे पहले इस संन्यासिनी को दोगी तो क्या पाओगी ?"— कौंती माई ने होंठों में मुस्कान भर कर पूछा ।

"मैं अपढ़ अहीरिन क्या जानूँ ! पर एक बात निश्चित है कि स्वार्थ से ऊपर उठ कर दूसरों की सेवा करें, तो मन को सन्तोष होता है और भगवान् उनकी सेवा करने लग जाते हैं । आप जैसे साधु-संत तो लोक-कल्याण के लिए अपने जीवन की सारी सुख-सुविधाएँ त्याग कर निकल पड़े हैं । पर हम जैसे लोग तो गृहस्थी की झंझटों में उलझे पड़े हैं । निःस्वार्थ भाव से हम कुछ नहीं कर पाते हैं । स्वार्थ की गंध हमारे कामों में आ जाए, तो भी आप-जैसों को चाहिए कि हमें क्षमा कर दें और यह परम्परा बनाये रखने के लिए हमें प्रोत्साहित करते रहें ।"

अहीरिन के मुख से इतना सुन कर कौंती माई प्रभावित हुईं । उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि लौकिक जीवन में भारत भले ही अनेक उतार-चढ़ाव देखे, फिर भी पारमार्थिक जीवन में हमेशा उन्नत ही रहेगा और समूचे संसार को मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा । उन्होंने उसकी भिक्षा

स्वीकार करते हुए पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है और कहाँ की रहने वाली हो ?"

"मुझे मादरी कहते हैं । पास ही अहीरों की बस्ती है । उसी में रहती हूँ । माई, पधारेंगी आप मेरी कुटिया में ?" मादरी ने अपना परिचय देते हुए अपने दिल की इच्छा को प्रश्न बना कर उनके सामने रखा ।

"क्यों नहीं ? जरूर आऊँगी । हाँ, मेरे साथ और दो जन आयेंगे ।"

"आने दीजिये न ! उनकी भी सेवा कर मैं अपने को धन्य समझूँगी ।"

"ये दोनों पति-पत्नी हैं । चोल देश के रहने वाले हैं ।" कोवलन् और कण्णकि को दिखा कर कौंती माई ने कहा, "बड़े घर के थे । दीन-दुखियों की सेवा भी खुले हाथ करते थे । पर अब भाग्य के बिगाड़े हुए हैं । भाग्य बनाने मदुरा पुरी को चल पड़े हैं ।"

"भाग्य का चक्कर तो हमेशा घूमता रहता है माई जी ! ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर । आज बिगड़े तो कल बनेगा । बस, इतना है कि हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए । अरे, मैं तो उपदेश देने लग गयी । सच पूछिये तो माई जी, मेरा मायका चोल देश में है और मेरा ब्याह हुआ है पांडिय देश में । जब आपने इन्हें चोल-देशवासी बताया तो मेरे मन में ममता जाग उठी और........"

"इन्हें तुम अपने घर में स्थान दोगी ? शरणागत परदेशियों की सेवा करने से पुण्य मिलता है । एक कहानी तुम्हें सुनाऊँ ?"

"कहानी सुनायें तो सुनूँगी । पर इन्हें शरणागत मानने की मैं धृष्टता नहीं करूँगी । ये आयें और मेरे घर पर ठहरें, अपना घर समझ कर ठहरें । ये मेरे घर में खुशी से ठहर सकते हैं । चाहें तो इनके रहने के लिए अलग प्रबन्ध भी कर दूँगी । मेरी बेटी ऐर्ये इनकी सुख-सुविधा का ख्याल रखेगी । वह बड़ी स्नेहशील लड़की है ।"

मादरी की बातें सुन कर कौंती माई ने सोचा, "मादरी सब तरह से सुपात्र है । कोवलन्-कण्णकि को इसके हाथ सौंप कर मैं निश्चिन्त हो सकती हूँ ।"

मादरी के साथ तीनों अहीरों की बस्ती में गये । मादरी ने सब तरह से उनका आदर-सत्कार किया । तीसरे पहर तक आराम करने के बाद कौंती माई ने विदा लेनी चाही ।

कण्णकि का दिल भर आया । बोली, "माताजी, आप इतने दिन यात्रा में साथ रहीं तो हमें लगा कि हमें बड़ा बल मिला है । आप विदा लेने की बात कहती हैं, तो दिन बैठा जाता है । क्या आप हमारे साथ ही इधर नहीं रह सकतीं ?"

"बैटी, मैं संन्यासिनी हूँ । ममता के बन्धन से छूट कर उठने का प्रयत्न हमें करना चाहिए । इसीलिए संन्यास-जीवन का एक नियम ही बन गया है कि हमें एक ही जगह पर टिकना नहीं चाहिए । आज यहाँ तो कल वहाँ..... यही हमारा क्रम है । पर सच पूछो तो बिटिया, इस यात्रा में तुम लोगों के साथ रहते-रहते एक तरह की आत्मीयता बढ़ गयी है । सोचती हूँ, तुम लोगों के साथ इतना निकटतम सम्पर्क क्यों बढ़ाया ? मुक्ति के मार्ग में इससे बाधा पड़ सकती है । तुम लोगों से बिछुड़ते हुए मेरे मन के एक कोने में न जाने क्या बीत रहा है । हाँ, कण्व जैसे महामुनि ही शकुन्तला को विदा करते हुए अपने को रोक नहीं पाये, तो मैं किस खेत की मूली हूँ । मुझे मोह-ममता में न बाँधो, सहर्ष विदा दो ।" कौंती माई ने कहा ।

कण्णकि निरुत्तर खड़ी रही । कौंती माई सबसे विदा ले कर चलने लगीं तो सबसे पहले उन्हीं की आँखें गीली हुईं ।

(११)

मादरी बहुत सबेरे उठ कर द्वार पर गोबर-जल छिड़कने आयी तो देखा कि कण्णकि उस काम से निवृत्त होकर चौक पूर रही है ।

मादरी ने अपने ही घर से सटे दूसरे घर में कोवलन्-कण्णकि के ठहरने की व्यवस्था कर दी थी । पूछा, "बेटी, रात को चैन से सोयी न ? सुख-सुविधा में कोई तकलीफ तो नहीं हुई न ?"

"क्या कहूँ, आपने तो माँ से बढ़कर हमारा ख्याल रखा है । ऐसी अच्छी व्यवस्था मुझे अपने घर में भी कम ही देखने को मिली ।" कण्णकि ने कहा ।

"मुझे तो अपने व्यापार के निमित्त अभी बाहर जाना होगा । लौटने में न जाने कितनी देरी हो । मैं प्रयत्न करूँगी कि सभी कामों से निबट कर जल्दी आ जाऊँ । तुम्हें रसोई बनाने की आदत हो तो करो, मैं ऐयें से कह

कर सारा प्रबन्ध करवा दूँगी । उसे अभी खाना बनाने नहीं आता, फिर भी इधर-उधर के कामों में मदद करेगी ।"

मादरी के सामने कण्णकि अपना अज्ञान कैसे प्रकट करे ? किस मुँह से कहे कि मुझे खाना बनाने नहीं आता । घर में नौकर-चाकरों के होने स सीखने की जरूरत ही नहीं पड़ी । इसलिए उसने प्रश्न का उत्तर घुमा कर दिया, "औरत का तो पहला काम है खाना बनाना सीखे और घर-गृहस्थी संभाले ।"

"बहुत अच्छा ! चूल्हे और ईंधन की व्यवस्था तो उधर है । मैं चावल, दाल, तरकारी वगैरह ऐर्ये के हाथ भेज दूँगी । उससे जो काम लेना चाहो, लो । संकोच न करना ।"

मादरी कुछ ही देर में सारा प्रबन्ध कर दही का मटका सिर पर लिये बाहर चल पड़ी ।

कण्णकि ने अन्दर जाकर चूल्हा जलाया । ईंधन धुआं उगलने लगा, तो कण्णकि ने फूँक लगायी । पर ईंधन जलने के बजाय धुआं उगलता ही जा रहा था । उससे आँखें लाल हो गयीं, जलने भी लगीं ।

कोवलन् पीछे से आया और यह दृश्य देख कर हँसने लगा ।

"अजी, हँसते क्यों हैं ? ईंधन सूखा नहीं है । इसलिए इस तरह धुआं निकलता है ।" कण्णकि ने सरोष कहा ।

"नहीं, बात यह नहीं है; चूल्हे के निकट तुम अपने होंठ ले जाती हो न ?"

"हाँ, फूँक लगाने के लिए ले जाती हूँ । तभी तो आग भड़क उठती है ।"

"चूल्हे के अन्दर बैठे अग्निदेव यह समझ बैठे हैं कि तुम्हारे होंठ उन्हें चूमने के लिए आगे बढ़ रहे हैं पर बार-बार उन्हें तुम धोखा देती हो, इसलिए वे भी धुआं उगल कर तुम्हें धोखा दे रहे हैं ।"

"वाह, आपको भी कैसी दिल्लगी सूझती है । आप भी फूँक लगाइये न !"

दोनों ने गाल पर गाल रख कर फूँक लगायी तो अग्निदेवता प्रसन्न हो उठे और भभक कर जल उठे ।

इसी समय ऐर्ये चावल, तरकारी आदि ले आयी ।

कण्णकि ने चूल्हे पर हाँडी चढ़ायी और चावल धोने गयी तो ऐर्ये ने कहा, "बहन ! इस हाँडी में भात पकाना है तो इतना चावल नहीं डालते । चावल ही चावल हो जाएगा । कुछ कम करो ।"

"इतनी बड़ी हाँडी है, इसमें इतना चावल क्यों नहीं समा सकता ?"

"चावल समा सकता है पर हाँडी में जो पानी है, उसका भी तो कुछ हिसाब है । पानी में उबलने पर चावल फूल जाता है । उसके लिए भी तो हाँडी में जगह चाहिए । अपनी माँ को पकाते हुए मैंने देखा है ।"

ऐर्ये की बात समझ में आ गयी । चावल नाप कर हाँडी में डाला, उसे पानी डाल कर धोया और तरकारी काटने बैठ गयी । तरकारी काटना भी एक कला है । कण्णकि उस कला से कहाँ परिचित थी । दरांती पर बैठना तक उसे नहीं आया । तरकारी कटती भी ऐसी थी कि उसके छोटे-बड़े टुकड़े हो गये ।

ऐर्ये ने कहा, "मेरी माँ तरकारी काटती है, तो करीने से काटती है और बराबर के टुकड़े आते हैं । मैं चीरती हूँ तो तरकारी के छिलकों के साथ उंगलियों के भी छिलके निकल आते हैं ।"

कण्णकि ने अपनी उंगलियों की ओर देखा । भगवान् की कृपा से खून नहीं निकला था, पर उंगलियाँ खून की तरह लाल हो गई थीं ।

तब तक चूल्हे पर चढ़ी हाँडी में से पानी खौलने की आवाज आयी । सुन कर ऐर्ये ने कहा, "हाँडी बुला रही है ।"

"कहाँ ? नहीं तो !" कण्णकि ने कहा ।

"पानी उबलने की आवाज सुनाई नहीं देती ?"

"हाँ, सुनाई देती है ।"

"तो धोया हुआ चावल हाँडी में डालिये न ।"

कण्णकि ने चावल डालकर ऐर्ये से कहा, "एक तरह से तुम्हें खाना पकाना तो आ गया ।"

हाँ, रोज जो देखती रहती हूँ । पर माँ अभी मुझे चूल्हे के पास जाने नहीं देती ।

थोड़ी देर के बाद चूल्हे की ओर दृष्टि गयी तो कण्णकि ने देखा कि चावल खौलते पानी के साथ ऊपर आ रहा है और पानी चूल्हे में गिरकर आग बुझा रहा है । कण्णकि हाथ मलने लगी ।

ऐर्ये झटपट उठी और जलते हुए ईंधन से एक-दो लकड़ी बाहर निकाली, तो आग की ताप कम हुई । चावल अब हाँडी की पकड़ में था ।

खाना जैसे-तैसे तैयार हो गया । दाल, तरकारी, सांभर, रसम,. सब बने थे । कण्णकि खुश थी, आज अपने हाथों से बनायी चीज पति को खिलाने जा रही है ।

"बहन ! गाय-बछड़ों को चारा-पानी देना है । मैं अपने घर हो आऊँ ?"—ऐर्ये ने इधर विदा ली और कोवलन् उधर नहा धो कर भोजन करने आ पहुँचा ।

कण्णकि ने कोवलन् के बैठने के लिए आसन बिछाया, खाने के लिए केले का पत्तल लगाया और एक लोटे में पानी भरकर रखा ।

कोवलन् खाने बैठा । खुशी में कण्णकि यह भूल गयी कि पत्तल में किस जगह पर कौन-सी चीज परोसी जाती है । दाल की जगह तरकारी और तरकारी की जगह दाल—किसी तरह खाना परोसा ।

कोवलन् भी खुश था कि आज कण्णकि के हाथों बना भोजन खाने को मिल रहा है ।

खिलाते-खिलाते कण्णकि ने पूछा, "खाना कैसा है ?"

"बहुत अच्छा है ! ऐसा खाना मैंने आज तक नहीं खाया ।"

"सांभर में इमली अधिक तो नहीं पड़ गई ?"

"कुछ कम पड़ी है । पर जायके में कुछ फरक नहीं पड़ा ।"

"रसम में नीबू का रस निचोड़ना भूल गयी थी । ठीक वक्त पर याद आ गया ।"

"हाँ, हाँ । इसीलिए तो रसम जायकेदार है ।"

"मेरा ख्याल है कि तरकारी में दो बार नमक डाल दिया है ।"

तरकारी का एक टुकड़ा मुँह में डालते हुए कोवलन् ने कहा, "सच कह रही हो ।"

"फिर भी जायके में तो कुछ फरक नहीं पड़ता है न ?"

"फरक कैसे पड़ता ?" होंठों पर जीभ फेरते हुए कोवलन् ने कहा और उसकी दृष्टि कण्णकि की सलज्ज आँखों की ओर लगी रही ।

कोवलन् भोजन समाप्त कर हाथ-मुँह धोया और बोला, "कहो तो मैं तुम्हें खाना परोसूँ ।"

"आपको कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं । मैं स्वयं परोस लूँगी । आप आराम कीजिए ।"

सन्ध्या होने को अभी एक पहर बाकी थी । कोवलन् ने कण्णकि से पूछा, "क्या मैं मदुरा नगरी को हो आऊँ ?"

"आप कहें तो मैं साथ चलने को तैयार हूँ ।" कण्णकि ने कहा ।

"मेरा भी जी करता है कि तुम्हें साथ ले चलूँ । पर……"

"क्या……?"

"व्यापार के संबंध में जा रहा हूँ । न जाने, कहाँ-कहाँ भटकना पड़े । जब तक कोई प्रबन्ध न हो जाए, तब तक इन्हीं स्नेहशील मादरी के घर ठहरी रहो ।"

"इच्छा है कि आपके साथ चलूँ तो मदुरापुरी देख सकती हूँ ।"

"मदुरापुरी देखने के लिए कितने ही अवसर मिल सकते हैं । चिन्ता न करो । तुमने कहा था कि मैं अपना नूपुर दूँगी । उसे बेच कर आप अपना व्यापार शुरू कीजिए । क्या तुम उतार कर दोगी ?"

"क्यों नहीं ? अभी दिये देती हूँ" कह कर कण्णकि दोनों नूपुर उतारने लगी ।

"दोनों क्यों उतारती हो ? एक काफी है ।" कहते हुए कोवलन् का कंठ रुँध गया ।

पर नूपुर उतारते समय कण्णकि के होंठों पर फूल खिल रहे थे । कोवलन् यह देखकर चकित रह गया—"कण्णकि भी कैसी स्त्री है कि उसके हृदय की थाह नहीं मिलती ।"

कण्णकि के हाथ से नूपुर ले कर कोवलन् विदा हुआ, तो कण्णकि की आँखों में चमकीले मोती झलके । हास्य-रूदन का यह संयोग अन्यत्र दुर्लभ

है । कोवलन् ने दुबारा कण्णकि को देखने के लिए आँखें उठायीं तो आँसू ने उसे देखने नहीं दिया ।

उस समय अहीरों की बस्ती में जाने कोई मार्मिक लोकधुन में विरहगीत गा रहा था ।

(१२)

कोवलन् मदुरापुरी को लक्ष्य कर चल पड़ा । रास्ता बताती हुई कल्पना उसके आगे-आगे जा रही थी । चाल ने तेजी पकड़ी और कल्पना से होड़ लगाने लग गयी ।

शुरू-शुरू में लगा कि कल्पना की जीत सुनिश्चित है । क्योंकि वह दूर की उड़ान भर रही थी । कोवलन् ने सोचा, "मदुरा नगरी का सौंदर्य देखने में हमें अपना समय नहीं लगाना चाहिए । पहले यह प्रयत्न करना चाहिए कि इस नूपुर को अच्छे दामों में बेच दिया जाय । बेचना ठीक होगा या गिरवी रखना ? गिरवी रखें तो पैसा कम मिलेगा । पर पैसा कम मिले तो क्या फायदा ? पूँजी के अनुरूप व्यापार जमता है । अतः बेच देना ही उचित है । हाँ, इस बेशकीमती नूपुर को खरीदने के लिए न जाने कोई मिलेगा भी कि नहीं ? क्यों न मिलेगा ? पांडिय राजा नेडुंचेलियन तो सुनते हैं कि कला के बड़े प्रेमी एवं पारखी हैं । उन तक इसे पहुँचाना है तो हमें सुनारों की गली में जाना चाहिए और इस विषय में मालूम करना चाहिए कि राजघराने के लिए गहने बनाने वाला सोनार कौन है ? उसके जरिये रनिवास तक पहुँच जाएँ, तो बस, बेंचना आसान है । औरतें गहने-जेवरों के पीछे पागल होती हैं, भूखी होती हैं । अमीर-गरीब का इसमें कोई फरक नहीं है । अमीर को अपनी हैसियत से ऊपर उठना पड़ता है, तो गरीब को अपनी पहुँच से बाहर की सोचनी पड़ती है । अपने पति को मनवाने के लिए हर स्त्री के पास एक अस्त्र है । उसका प्रयोग कर दिया तो बस, शत-प्रतिशत सफलता निश्चित है । वह है प्रणय-कलह । रानी कोप्पेरुन्देवी भी इसका अपवाद नहीं हो सकतीं ।"

"पर कण्णकि ....?"

तेज कदम बढ़ाने वाली कल्पना मुड़ पड़ी और अहीरों की बस्ती की ओर चल पड़ी ।

"मेरी कण्णकि हर किसी विषय में अपवाद है । नूपुर पहनते हुए उसके होंठों में जो मुस्कुराहट थी, वही मुस्कुराहट उसे उतारते समय और भी निखर उठी । पति का सुख अपना सुख मानकर उसने न जाने कितनी नरक-यातनाएँ भोगीं । संयोग और वियोग में मेरे प्रति उसकी भावना में रत्ती-भर भी परिवर्तन नहीं आया । मेरे मन में यह विचार बार-बार उठता है कि वह साक्षात् देवी है, मानवी अवतार लेकर आयी है न जाने किस उद्देश्य से ।"

"पर इस जीवन में तो मेरी पत्नी है । मर्त्य लोक में विचरने वाली औरत है । हो सकता है कि उसके अवचेतन मन में नूपुर के प्रति आसक्ति हो और मेरा मन रखने के लिए ऊपरी दिल से उतार दिया हो । ऐसा हो तो भी क्या हुआ । अगर भाग्य ने साथ दिया तो हम इससे भी बढ़िया नूपुर उसे बनवा देंगे ।"

कल्पना लोक से लौटने के पहले, कोवलन् के पैर मदुरा नगरी की सोनार-टोली में थे । पिछड़ी कल्पना दौड़ी हुई आयी और सोचने लगी कि किससे पूछने पर पता चलेगा कि वह सोनार कौन है, जिसकी पहुँच राजघराने तक है ।

उसी समय कुछ सोनार बातें करते हुए उस रास्ते से आये । वंचि सोनार उस टोली का मुखिया था । कोवलन् उसके निकट गया और बोला, "मैं चोल देश से आ रहा हूँ, व्यापार के निमित्त । कुछ गहने बेचने हैं । आप मेरी मदद कर सकेंगे ?"

"क्यों नहीं ? जरूर करेंगे । आइये, हमारे घर । घर चल कर बातें करेंगे ।" सोनारों के मुखिया ने कहा ।

साथ के सुनार विदा लेकर अपने-अपने घर चल पड़े और सुनारों का मुखिया कोवलन् को ले कर अपने घर पहुँचा । घर पहुँचते ही अपनी धाक जमाने के विचार से बोला, "इस टोली का मुखिया मैं हूँ । इस शहर के हर बड़े घराने से मेरा परिचय है । यहीं क्यों, पांडिय राजा के दरबार में भी आने-जाने का मौका मुझको ही मिला है । महारानी कोप्पेरुन्देवी तो मेरी कारीगरी से बहुत खुश हैं । मैं परसों या तरसों रनिवास में गया तो बोलीं, "क्यों, मेरे नूपुरों का क्या हुआ ?" मैंने कहा, "सब्र कीजिये, आ जाएँगे ।"

कारीगरी की चीजें तो सब जगह बिक जाएँगी । "कहिये, आप क्या लाये हैं ?"

वंचि सुनार के मुख से इतना सुनना था कि कोवलन् की कल्पना ने मदुरा नगरी में एक आलीशान महल खड़ा कर दिया । बोला, यानी अपना मन खोल कर रख दिया, "चोल देश में मेरा बड़ा कारोबार था । कावेरी पूम्पट्टिनम् का नाम सुना है ? वहीं का रहने वाला हूँ मैं । पर भाग्य ने मेरे साथ ऐसी दगा कर दी कि मैं उठ नहीं पाया हूँ और यहाँ चला आया हूँ । यहाँ तक कि अपनी पत्नी के जेवर तक मुझे बेचने पड़ रहे हैं । यह देखो, यह नूपुर उसी का है । इसे महारानी के ही हाथ बेच दो । सच पूछो तो मेरी स्त्री भी एक महारानी है, बल्कि महारानी से भी बढ़कर है । इसलिए एक महारानी की चीज दूसरी महारानी के हाथ में जाए, तो मन को यह सांत्वना रहेगी कि एक सुपात्र के ही हाथ में हमारी वस्तु गयी है । मैं मुँह माँगा इनाम दूँगा तुम्हें ।"

सोनार वंचि ने नूपुर हाथ में लिया तो उसकी आँखें चौंधिया गयीं । उसकी कारीगरी देख कर वह अचम्भे में आ गया । उसकी आँखों के सामने दो नूपुर आये । एक कण्णकि का और एक कोप्पेरुन्देवी का । दोनों को मन की आँखों के आमने-सामने रखा । देखा कि दोनों की बनावट एक-जैसी है । कहीं रत्ती-भर भी अन्तर नहीं है ।

बस फिर क्या था । वंचि के मन में वंचना के विचार उठे ।

कुछ ही दिन पहले महारानी कोप्पेरुन्देवी ने वंचि सोनार के हाथ मरम्मत के लिए अपना नूपुर दिया था । विवाह के अवसर पर चोल देश से मिला हुआ उपहार था नूपुरों का वह जोड़ा । महारानी को उसकी कारीगरी इतनी पसन्द थी कि एक क्षण भी उन्हें अपने पैरों से अलग नहीं किया था । न जाने दायें पैर के नूपुर के सिरे पर लटकी एक मणि कैसे टूट कर अलग हो गयी थी । उसी की मरम्मत करने के लिए उन्होंने उसे वंचि सुनार के हाथ में दिया था ।

स्वर्ण से वास्ता रखने वाले सुनारों को, न जाने किसका अभिशाप मिला है कि उनका मन खरा सोना नहीं रहता । देखते-देखते आँखों के सामने कुछ-न-कुछ हड़प लेने की कला में वे माहिर होते हैं । वंचि इस कला में बड़ा उस्ताद था । इस बार उसने महारानी का वह नूपुर ही उड़ा देने की

सोची । एक दिन महारानी के पास जा कर कहा, "नूपुर की चोरी हो गयी है ।"

"चोरी हो गयी ? कैसे ?" महारानी को उस पर विश्वास नहीं हुआ । सुनारों की टोली की छान-बीन करने का आदेश ही दे दिया ।

बस, वंचि की दशा सांप-छछूंदर की-सी हो गयी । न निगलते बना और न उगलते । महारानी के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा, "मेरे घर की तलाशी होगी तो अपने मातहतों की दृष्टि में मैं गिर जाऊँगा । उनके घरों की तलाशी हो तो भी मुझी को दोषी ठहराएँगे । दोनों ओर से मेरी ही बदनामी होगी । मुझे मोहलत दीजिये । किसी तरह पता लगाऊँगा और आपकी चीज आपको सौंप दूँगा ।"

कहने को तो वह कह गया । चोरी के नूपुर को वह प्रकट करे तो कैसे करे ? तब चोरी छिपेगी नहीं । वह पसोपेश में पड़ गया । महाराज भी महारानी की खातिर तलाशी के लिए आदमी नहीं भेज सके ।

वंचि ने सोचा, "खासा मौका हाथ लगा है । हमें इससे फायदा उठा लेना चाहिए । कोवलन् बेकसूर हो तो हमें क्या ? इसके हाथ में जो नूपुर है, वह महारानी के नूपुर से हूबहू मिलता है । अतः इसे चोर ठहरा कर हमें अपनी और अपनी टोली की प्रतिष्ठा बचा लेनी चाहिए ।" कुछ ही क्षणों में उसके मन में पूरी योजना तैयार हो गयी ।

"अरे भाई ! क्या सोच रहे हो ?" कोवलन् ने पूछा ।

"यही कि अभी महाराज से मिलें या कल सबेरे जाएँ ?"

"भाई ! जैसा उचित समझो, करो । पर मेरा काम बन जाए, इसका ख्याल रखो ।" कोवलन् ने कहा ।

"अवश्य ! आप बेफिक्र रहिये । कल सबेरे तक आपका काम हो जाएगा ।"

वंचि सोनार ने कोवलन् के ठहरने की उत्तम व्यवस्था की और सुख-सुविधा का ऐसा ख्याल रखा, जैसा बलि के बकरे का रखा जाता है ।

बलि के बकरे को क्या इस बात का पता होता है कि दूसरे दिन बलि की वेदी पर उसे चढ़ाया जाएगा ।

कोवलन् अपने बनने सुधरने वाले भविष्य का मधुर स्वप्न देखता हुआ सो गया ।

उसी दिन शाम को महाराज नेडुंचेलियन के साथ महारानी कोप्पेरुन्देवी मीनाक्षी के मन्दिर में गयीं । देवी के दर्शन करते-करते उनकी दृष्टि भगवती के पैरों में पड़ी और थोड़ी देर के लिए वहीं अटक गयीं । कारण, देवी के पैरों में नूपुर देख कर उन्हें अपने नूपुरों का स्मरण हो आया । सोचने लगीं, "वंचि भी कितना बड़ा दगाबाज निकला । मुझे तो लगता है कि उसी ने मेरा नूपुर चुराया है । पर बात ऐसी करता है, मानो वह बेकसूर हो । मैं अब उसका कोई भी बहाना नहीं सुनने की । मेरे ही कारण महाराज उस पर रियायत दिखा रहे हैं । बात पक्की, आज उनसे वंचि पर कार्रवाई करने को कह दूँगी !"

एकांत मिलते ही महारानी ने अपनी बात की भूमिका बाँधने के विचार से कहा, "कहा जाता है कि पांडियों के राज्य में न्याय का विधान अति उत्तम है ।"

इसमें क्या शक है ? तुम्हें पता हो या न हो, "एक बार तिरुत्तांगल नाम के गाँव में वार्तिकन् नाम के ब्राह्मण को चोरी के अपराध में पकड़ कर नगर रक्षकों ने कारावास में डाल दिया । पर बेचारा ब्राह्मण निरपराध था । इस बात का पता राजा को चले तो कैसे चले ? न्याय-विधान में दैव भी साथ होता है । इसलिए क्या हुआ, मालूम है ? उस गाँव में दुर्गा का एक मन्दिर था । उसका किवाड़ ऐसा बन्द हो गया कि लाख प्रयत्न करने पर भी खोला नहीं जा सका । राजा के कानों तक यह बात पहुँची तो जाँच-पड़ताल का आदेश दिया ।"

"अरे, आप तो कहानी सुनाने बैठ गये ।"

"हाँ, पहले सुनो, बाद में बोलो । —अरे, मैं क्या कह रहा था...... हाँ, जाँच-पड़ताल का आदेश दिया तो नतीजा यह निकला कि वह ब्राह्मण चोर नहीं है । पराशर नाम का एक ब्राह्मण चेर राज्य में गया और राजा से मिला । उसकी विद्वत्ता से प्रभावित हो कर राजा ने बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट कीं । उन्हें लेकर लौटते हुए वह वार्तिकन् के गाँव में जा ठहरा । वार्तिकन् के पुत्र दक्षिणामूर्ति ने ऐसा सुस्वर वेदपाठ किया कि पराशर पुलकित हो गया और चेर-राजा की दी हुई सारी भेंट उस लड़के को देकर चला गया । गाँव

वालों में ईर्ष्या की आग जल उठी । वे वार्तिकन् की समृद्धि नहीं देख सके । उसे चोर ठहरा कर कारावास दिला दिया ।"

"वार्तिकन् निर्दोष साबित हो कर छूटा तो दुर्गा के मन्दिर का द्वार आप ही आप खुल गया ।"

"अच्छा ! इस कहानी का क्या मतलब हुआ ? बताइए तो ।"

"तुम्हीं कहो न !"

"यही कि दैवी सहायता के बिना राजा से भी न्याय नहीं हो पाएगा ।"

"ऐसा भी हो सकता है कि राजा न्यायी होता है तो दैवी सहायता उसे खुद-ब-खुद मिल जाती है ।"

"अजी महाराज ! आप तो मुझे अपनी बातों में ले गये । मैं जो कहने जा रही थी, उसे भुला ही दिया ।" कोप्पेरुन्देवी ने कहा ।

"नहीं, नहीं ! कहो भी, सुनूँ तो ।" नेडुंचेलियन ने कहा ।

"हमारे ही महल में दो चोर हैं, जिनका आपको पता नहीं ।"

"वाह ! मुझे पता नहीं ? कहो तो अभी दोनों को पकड़ कर सजा दिये देता हूँ ।"

"हँसी-खेल की बात नहीं ।"

"हाँ, हाँ मैं जानता हूँ ! एक तुम हो, मेरा दिल चुरा लिया है और दूसरा मैं हूँ, तुम्हारा दिल चुरा लिया है । हम दोनों दिल-चोर हैं । कहो, कौन सी सजा दूँ ?"

"बात गम्भीर है ।"

"हाँ, मानता हूँ, सजा भी उसी के माकूल होगी । न्याय-विधान में जैसा कहा गया है, उसका हू-ब-हू पालन होगा ।"

नेडुंचेलियन के होंठ आगे बढ़े और कोप्पेरुन्देवी के पीछे हटे । बोली, "ठहरिये ! बात सुनिये । वंचि चोर है ।"

"चोर है ?"

"हाँ, उसी ने मेरा नूपुर चुराया है । अपनी चोरी को छिपा रहा है ।"

"यह कैसे मानूँ ?" वह तो गिड़गिड़ा कर कह रहा है, "मैंने या मेरी टोली वालों में से किसी ने चोरी नहीं की । मेरे यहाँ जेवर खरीदने वालों का, बेचने वालों का और नये बनवाने वालों का तांता लगा ही रहता है । हमारे ही देश के नहीं, चेर-चोल देश के भी आदमी आते हैं । न जाने, कौन मुझे गफलत में पाकर उड़ा ले गया । जरा सब्र कीजिये, नूपुर जरूर मिल जाएगा । महारानी का नूपुर मूल्यवान् है । खरीद-फरोख्त की तकलीफ होगी । मेरे आदमी इन तीनों राज्यों में फैले हैं । चोरी पकड़ ली जाएगी ।" मुझे भी उसकी बात ठीक जँचती है ।

"लेकिन मुझे तो उसकी बात पर विश्वास नहीं होता । वह ऐसा घुमा फिरा कर बात करता है कि मुझे उसी पर सन्देह होता है । एक बार उसके घर और गली की तलाशी ली जाए तो कैसा हो ।"

"तुम्हीं ने तो कहा था कि उसकी तलाशी नहीं लेनी चाहिए ।"

"पर अब मैंने वह विचार बदल लिया है ।"

"मैंने तुम्हारे विचार को गाँठ बाँध लिया है । मान लो मैंने तलाशी करवाई और चोरी की चीज नहीं मिली तो किसकी बदनामी होगी ? लोग कहेंगे कि नेडुंचेलियन में भला-बुरा पहचानने की बुद्धि नहीं है । अतः मेरा विचार है कि वंचि को और कुछ मोहलत दें ।"

"इस तरह हम मोहलत देते रहे तो इस जन्म में मेरा नूपुर नहीं मिलने का ।"

"कैसी बातें मुँह में लाती हो ? कहो तो अभी नूपुर का एक नया जोड़ा बनवा दूँ ।"

"चोर की दाढ़ी में तिनका । बात मेरी समझ में आ गयी । इस चोरी के पीछे वंचि नहीं, आप हैं ।"

"क्या बकती हो ?"

"बकती-वकती कुछ नहीं । आपको मेरा वह नूपुर पहनना गवारा नहीं । इसलिए कि वह चोल देश की चीज है । आप लोग चोल देश की कन्याएँ लेते हुए नहीं हिचकते और चोल देश में कन्याएँ देते हुए भी नहीं सोचते । पर वहाँ की कारीगरी आप लोगों को एक आँख नहीं भाती । अभी एक-एक कर बातें मेरी समझ में आती जा रही हैं । कितनी बार आपके मुँह से सुन

चुकी हूँ कि 'वंचि जैसे सुनार पर मुझे नाज है' । अब मैं उसका पूरा-पूरा अर्थ समझ गयी । वंचि को अपने हाथ में डाल कर आप ने मेरा नूपुर गुम कर दिया है । नहीं तो नया जोड़ा बनवाने की बात आपके मुँह से कैसे निकलती ?" कोप्पेरुन्देवी न जाने गुस्से में क्या-क्या कह गयीं ।

नेडुंचेलियन बरदाश्त नहीं कर सके ।

"मुझे चोर ठहराते हुए तुम्हें शरम नहीं आती ?" पैर पटकते हुए राजा वहाँ से चल दिये ।

महाराज अपने कमरे में जाकर क्रुद्ध सिंह की तरह चहलकदमी करने लगे । "एक नूपुर को ले कर कोप्पेरुन्देवी ने मेरा कितना बड़ा अपमान कर दिया । संयोग को वियोग में बदल दिया, सुख को दुख में परिणत कर दिया । उसने कहा सो किया ? वंचि सुनार बड़ा ही धूर्त है । आँखों में धूल झोंक कर चकमा दे दिया है । भले ही मेरी बदनामी हो, कल सबेरे उठते ही उसके घर और गली की तलाशी लेने की आज्ञा दे ही देनी चाहिए ।" विचारों के मंथन से वे यह नतीजा निकाल ही रहे थे कि वंचि सुनार उनके सामने आ खड़ा हुआ । उसमें भोर होने तक बरदाश्त करने का साहस नहीं था ।

महाराज के आग्नेय नेत्र अपनी ओर पड़ने के पूर्व ही उसने अत्यन्त विनय से कहा, "महाराज ! चोर का पता लग गया । उसे मैं अपने ही घर में ठहरा कर आया हूँ । महारानी का नूपुर उसके हाथ में है । चोल देश का रहने वाला है वह । अभी आदमी भेजें तो रंगे हाथों उसे पकड़वा दूँ ।"

एक सांस में वह सारी बातें कह गया तो महाराज ने सोचा, "भगवान् बड़ा दयालु है । मुझे बचा लिया । नहीं तो कल सबेरे वंचि पर क्या बीतती ? मेरी मर्यादा का क्या होता ? कोप्पेरुन्देवी क्या अनाप-शनाप बक गयीं ? सिर्फ मुझे नहीं, वंचि को भी चोर कह दिया । आखिर वह कैसा खरा सोना निकला । उसके मन में जरा भी मैल नहीं है । औरतों की बुद्धि पर मुझे तरस आता है । कोप्पेरुन्देवी को इस बात का जब पता चलेगा, तब बहुत पछताएगी । मेरे सामने अपना मुँह दिखाने तक की नहीं सोचेंगी । तब मैं क्या करूँगा ? अपने हाथों उसे नूपुर पहनाकर खुश करूँगा । उसके मुँह में लज्जा की ऐसी रेखा खिंचेगी कि......"

उसी समय उनके चेहरे पर क्रोध की रेखा खिंचीं और नगर रक्षक को तत्काल उपस्थित करने का आदेश दिया ।

उसके प्रवेश करते ही उन्होंने आदेश दिया, "अभी वंचि के साथ तुम अपने आदमी ले कर जाओ । यह जिस आदमी को दिखायेगा, उस आदमी के हाथ में अगर महारानी का नूपुर रहे तो उसे मार कर नूपुर यहाँ लाना ।"

"जो आज्ञा !" नगर रक्षक ने सिर झुका दिया ।

(१४)

सोते-सोते कोवलन् ने जो सपना देखा, वह उसके लिये आनन्ददायक था ।

"वंचि सुनार महाराज नेडुंचेलियन के पास जाता है । महारानी कोप्पेरुन्देवी के साथ वे वार्तालाप कर रहे हैं । वंचि को देखते ही वे पूछ बैठते हैं, 'कोई नई चीज लाये हो ?' वंचि नूपुर की बात उठाता है और कहता है कि एक नूपुर बिक्री के लिये आया है ।' चोल देश की कारीगरी का उत्तम नमूना है । महाराज की आज्ञा हो तो उस आदमी को लाऊँ, जो बेचने के लिए यहाँ आया है । 'वह कहाँ ठहरा है ?' महारानी के इस प्रश्न के उत्तर में वह कहता है, अपने ही घर में ठहरा कर आया हूँ । 'महाराज कहते हैं,' उसे यहाँ लाने की जरूरत नहीं । मैं ही महारानी के साथ तुम्हारे घर आऊँगा और उस व्यापारी से मिल कर दाम तय कर लूँगा । कहे अनुसार महाराज वंचि सुनार के घर आ जाते हैं तो कोवलन् हड़बड़ा कर उठ बैठता है ।"

"बाबू जी ! उठिये और देखिये कि कौन आये हैं ?" वंचि सुनार ने ऊँची आवाज में कहा तो कोवलन् सचमुच हड़बड़ा कर उठ बैठा । आँखें मल कर देखा तो सामने पांडिय राज्य के कुछ सिपाही और नगर-रक्षक खड़े थे ।

नींद की खुमारी में कोवलन् की समझ में नहीं आया कि इतने लोग एक साथ क्यों आ धमके हैं ।

वंचि सोनार ने कहा, "ये लोग महाराज के पास से आ रहे हैं । आपकी बात सुनने पर मुझे नींद ही नहीं आयी । महाराज के पास जा कर

सारा वृत्तान्त सुनाया तो वे इतने खुश हुए कि क्या कहूँ ? आधी रात के इस वक्त भी उन्होंने मेरे साथ आदमी कर दिये हैं । "कहाँ है, वह नूपुर ? इन्हें दिखाइए तो ।"

"तुम्हारा आभार कैसे मानूँ, वंचि ? सबेरे भी तो यह काम हो सकता था ।"

"हाँ, हो सकता था । पर मेरा दिल धड़क रहा था कि कहीं आपका मन बदल न जाए या मेरा ही मन न बदल जाए । इसीलिये महाराज को इतनी रात बीतने पर भी तकलीफ दी ।" उन्होंने कहा, "चीज पसन्द आयी तो मुँह माँगा दाम दे कर हम लेंगे । रात का वक्त है न ? इसीलिए कुछ सिपाहियों को भी नगर-रक्षक के साथ भेज दिया है ।"

"अच्छा !"

"नूपुर देख कर ये जाएँगे तो राजा से कुछ कह सकेंगे ।"

"हाँ, हाँ ।" कोवलन् ने गाँठ से नूपुर उतार कर नगर-रक्षक के सामने रखा ।

नगर-रक्षक ने उसे उलट-पलट कर देखा और कहा, "यह तो बहुत सुन्दर है ।"

"यह मिल जाए तो महारानी खुश होंगी न ?"

"बेशक ।"

नगर-रक्षक ने कोवलन् का चेहरा पढ़ा तो उसे लगा कि वह बेकसूर है । बिना जाने बूझे कोई कैसे कहे कि यह चोर है । वह पसोपेश में पड़ गया ।

कोवलन् पर तो एक ही धुन सवार थी । पूछ बैठा, "क्या सोच रहे हैं ?"

नगर-रक्षक क्या जवाब दे ? उसके मुँह के सामने ही कैसे कहे कि तुम नूपुर-चोर हो और राजा ने आज्ञा दी है कि तुम्हें मार कर नूपुर लाया जाए । फिर भी कुछ उत्तर तो देना ही था, अतः बोला, "चीज तो बहुत अच्छी है । सोच यह रहा हूँ कि राजा के पास अभी जाएँ या सुबह, क्योंकि आधी रात बीत चुकी है ।"

वंचि सुनार को लगा कि बनता काम बिगड़ता जा रहा है । सोचा, सोचने-समझने के लिए कुछ भी अवकाश दिया गया तो उसकी पोल खुल जाएगी । इसलिए इशारे से नगर रक्षक को अकेले में बुलाया और कहा, "मेरे ख्याल में यह चोर है, शक नहीं है ।"

"चेहरे-मोहरे से तो ऐसा नहीं लगता । भलमनसाहत टपक रही है ।"

"चेहरे पर क्या यह लिखा रहता है कि यह भला आदमी है और यह बुरा आदमी ? ऐसे संसार में कितने ही आदमी हैं, जो देखने में उद्दण्ड लगते हैं, पर दिल के बड़े नरम होते हैं । देखने में गऊ जैसा आदमी न जाने क्या-क्या कर गुजरता है । यकीन मानिये, यह चोर है ।"

"कैसे मानें ? उसके लिये कुछ सबूत चाहिये ? केवल नूपुर के इसके हाथ में होने से इसे चोर नहीं ठहराया जा सकता । पूछ-ताछ करनी होगी ।"

"पूछ-ताछ कैसी ? यह तो अजनबी है और इसके हाथ में महारानी का नूपुर है । इससे बढ़कर प्रत्यक्ष प्रमाण आपको क्या चाहिए ?" वंचि सुनार ने कहा ।

"पूछ-ताछ करने पर भी कोई चोर अपने को चोर मानेगा ?" किसी सिपाही ने कहा ।

"गुप्तचर विभाग किसलिये है ? उसे यह काम सुपुर्द किया जाए तो पता लगा कर बता देगा ।" दूसरे सिपाही ने कहा ।

"पहले इसे कारावास में डाल दें, फिर पता करायें ।" तीसरे ने कहा ।

"उससे बढ़ कर यह अच्छा है कि राजा ही के पास ले जाएँ ।" चौथे ने कहा ।

"यही मेरा भी विचार है । न जाने, महाराज ने किस मनोदशा में यह आदेश दिया ।" नगर रक्षक ने कहा ।

सुनकर वंचि सुनार का माथा ठनका ।

"ऐसा करने से संभव है कि सारी स्थिति बदल जाए और उसी के मत्थे सारा दोष मढ़ा जाये । न जाने, उस हालत में महाराज कैसी सजा दें ?" प्राणों के मोह और भय ने उसे अन्तिम प्रयत्न करने को बाध्य किया तो बोला, "तुम लोग तो अपने-अपने मन की कह रहे हो । राजा के मन

में क्या विचार था, इसका तुम लोगों को पता नहीं । महाराज ने जब आदेश दिया, तब वहाँ मेरे और नगर-रक्षक के सिवा और कोई नहीं था ।"

"उनका क्या आदेश था ? दुहराओ तो सुनें ।" सिपाहियों ने एक स्वर में कहा ।

"अभी वंचि के साथ तुम अपने आदमी लेकर जाओ । यह जिस आदमी को दिखायेगा, उस आदमी के हाथ में अगर महारानी का नूपुर रहे तो उसे मार कर नूपुर यहाँ लाना ।" महाराज के आदेश को वंचि ने वैसे ही दुहराया ।

"है न बात सच्ची ?" एक सिपाही ने नगर-रक्षक के प्रति मुड़ कर पूछा ।

"हाँ, बिलकुल यही बात उनके मुख से निकली थी ।" नगर रक्षक ने स्वीकार किया ।

"महाराज के पास चोर को ले जाना ही होता तो वे साफ कह सकते थे कि चोर को पकड़ कर मेरे सामने हाजिर करो ।" वंचि ने अपनी बात की पुष्टि में कहा ।

"तुम ठीक कहते हो । महाराज ने सोच-समझ कर ही कहा है । अपराधी को उनके पास ले जाने की कोई जरूरत नहीं है ।"

"हमारे दण्ड-विधान में चोरी सबसे बड़ा अपराध माना जाता है । उसकी सजा मौत है । प्रत्यक्ष प्रमाण के न मिलने पर ही अपराधी को राजा के सामने हाजिर करना चाहिए या न्यायालय की शरण में जाना चाहिए । यहाँ तो अपराधी रंगे हाथों पकड़ा गया है । अतः आदेश का पालन करना हमारा धर्म है ।"

तर्क अकाट्य था । नगर-रक्षक भी अवाक् रहा ।

वंचि सुनार को बल मिला तो बोला, "तुम लोगों को नूपुर पर तो कोई शक नहीं है न ?"

"देखने से तो वह महारानी का ही मालूम होता है ।" नगर रक्षक ने कहा ।

"आपको ऐसा ही करना चाहिए । पर मैं जाति का सोनार हूँ, गहने-जेवरों का पारखी हूँ । मैं कहता हूँ कि यह महारानी का ही नूपुर है । इससे बढ़

कर आपको क्या प्रमाण चाहिये ? अगर इस पर कोई मुकदमा चले तो मुझको ही परख कर बताना पड़ेगा । अब मैं झूठ बोलूँ तो शहर में कैसे अपना मुँह दिखा सकूँगा ?" वंचि सोनार ने कहा ।

कोवलन् कितनी देर अन्दर सब्र से बैठा रह सकता था ? जिज्ञासा ने जोर मारा तो बाहर उठ आया और अन्तिम वाक्य सुन कर पूछा, "क्यों जी, नूपुर पर इन लोगों को शक है क्या ?"

"नूपुर पर नहीं, आप पर ।" कच्चे दिल का एक सिपाही कोवलन् पर टूट पड़ा ।

अगले क्षण कोवलन् का सिर धड़ से अलग था ।

"अरे, तुमने यह क्या कर डाला ?" सबकी जबान पर एक ही प्रश्न था ।

"जो करना था, कर दिया । तुम लोग आगा-पीछा सोच रहे थे । राजा के वफादार सेवक को जो करना चाहिये वह मैंने कर दिया । राजाज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है । झूठ-सच का पता लगाना नहीं और पाप-पुण्य का लेख-जोखा करना भी नहीं । कर्त्तव्य करना हमारा परम धर्म है, फल की आशा करना नहीं ।" सिपाही ने सगर्व उत्तर दिया ।

किसी को काटो तो खून नहीं । वातावरण सर्द और स्तब्ध था । वंचि सुनार ने सन्तोष की एक लम्बी सांस ली, जिसे सुनने को वहाँ कान न थे ।

नगर रक्षक को वंचि सुनार के साथ कर महाराज नेडुंचेलियन लेटे तो उन्हें नींद ही नहीं आ रही थी । इधर-उधर करवटें लेते रहे । मन में तो भाँति-भाँति के विचार उठ रहे थे । "किसी आदमी के हाथ में महारानी का नूपुर होने मात्र से उसे कैसे दोषी ठहराया जाए । हो सकता है कि चोरी करने वाला एक हो और उसे बेचने के लिये लाने वाला कोई दूसरा हो । बिना सोचे-विचारे हमने यह आदेश क्या दे दिया । अब निरप्राध व्यक्ति मारा जाए तो उसका पाप किसके सिर लगेगा ? हमें चाहिये था कि उसे मारने का आदेश न देकर, पकड़ कर लाने का दें । अब पछताने से क्या लाभ ? इस वक्त वहाँ न जाने क्या हुआ होगा ?" उनके हाथ आप ही आप गर्दन पर गये तो ऐसा दुखा जैसे किसी ने तलवार चला दी हो ।

"अरे, कोई है ? उस हत्या को रोको !" महाराज बुलन्द आवाज में चीख पड़े और सिर पकड़ कर बैठ गये ।

इसी समय वंचि के घर में चिड़िया खेत चुग गयी थी ।

(१५)

"कण्णकि !" मादरी ने आवाज दी ।

"अभी आयी, माँ !"

रात भर विचारों के थपेड़ों ने कण्णकि को ऐसा पछाड़ा था कि उसका उठने का मन ही नहीं हुआ । मादरी के बुलाने पर वह बड़े यत्न से उठी और किसी प्रकार किवाड़ खोले ।

"अरे, एक रात में तुम्हारी सूरत कैसी हो गयी ? क्या रात भर तुम सोयी नहीं थी ?" मादरी ने पूछा ।

"नींद आवे, तब न । जागते-जागते न जाने मैंने कितने सपने देख लिये । कभी सुखद, कभी दुखद, कभी भयावह । उफ !"

"चिन्ता छोड़ो, बेटी ! भगवान भला करेगा ।" मादरी ने आश्वासन दिया ।

इसी समय ऐयें वहाँ आयी और मादरी से बोली, "माँ, आज मालिनी बाजार नहीं जाएगी ।"

"क्यों नहीं जाएगी ?"

"उसके घर में न जाने क्यों, दही नहीं जमा है ।"

"क्या कहती हो तुम ? अभी-अभी शोलै कह रही थी कि उसके बैल आँसू बहा रहे हैं ।"

"हमारी गाय लक्ष्मी के गले से मेरी आँखों के सामने कंठी टूट कर गिर गयी, माँ ।"

"क्या बात है, आज इस तरह अपशकुन पर अपशकुन हो रहे हैं ?" अपने ही से मादरी ने अर्ध-स्वगत प्रश्न कर लिया ।

"भाग्य की मारी मैं आयी हूँ न शायद इसीलिए !" कण्णकि ने कहा ।

"कैसी बातें मुँह में लाती हो, मेरी कण्णकि बिटिया ? मैं तो कहूँगी कि तुम लक्ष्मी हो, तुम्हारे आने से हमारे सारे कष्ट दूर हो जाएँगे ।"

"ऐ री मादरी ! न जाने, मेरा बछड़ा खेलता-कूदता क्यों नहीं ।" कहती हुई मीनाक्षी उधर ही आ गयी ।

"न जाने, भगवान हम पर क्या कहर ढा रहे हैं । उसे उतारने के लिये हम 'कुरवै कुत्तु' (गोपिका नृत्य) का आयोजन करें तो कैसा हो ?"

"यही कहने के लिए मैं आयी थी । आज, अभी आयोजन करें !"

"हाँ, हाँ ! अच्छे कामों को टालना नहीं चाहिए । मैं ऐर्ये को तुम्हारे साथ करती हूँ । गाँव में सबसे कह दो कि नौ बजे के अन्दर-अन्दर तिरुमाल (भगवान विष्णु) के मन्दिर में इकट्ठे हो जाएँ । मादरी ने ऐर्ये को मीनाक्षी के साथ कर दिया ।

कण्णकि ने पूछा, "यह 'कुरवै कुत्तु' क्या है ?"

"बेटी, तुम तो जानती हो, हम अहीरों के लिये कृष्ण-कन्हैया कुलदेवता हैं । छुटपन में जब वे नन्द गोकुल और वृन्दावन में पले, तब कितनी आपदायें पहाड़ों की तरह टूट पड़ीं, मालूम है ? विषधर कालिय नाग से बचाया था, गोवर्धन गिरि को अपनी उँगली पर उठा कर इन्द्र के कोप से रक्षा की थी । इस प्रकार कितनी घटनाएँ गिनें ? सबसे उन्होंने गोप-कुल की रक्षा की थी । इन कारणों से वे हम अहीरों के प्यारे हैं । जब कभी विपदाओं की पूर्व-सूचना मिलती है, हम कुरवै कुत्तु करती हैं । सात कन्याएँ गोपिकाओं का भेष धारण कर नाचती-गाती हैं तो वे खुश होते हैं और सारी विपदाएँ टल जाती हैं ।"

"अच्छा !"

"नहा-धो कर तुम भी आओ । तुम्हारा मन भी बहलेगा और तुम्हारे लिए एक नया रास्ता भी खुलेगा ।" —मादरी ने कहा ।

विष्णु भगवान् के मन्दिर में अहीरों की समूची बस्ती आ जुटी । भगवान् को चढ़ाने के लिए फल-फूल, दूध-दही, घी-मक्खन आदि का अंबार लग गया ।

कन्याओं का सामूहिक नृत्य बड़ा ही लुभावना था । गाना इतना उत्तम कि सुनने वाला भगवान् का सान्निध्य ही अनुभव करते । "इस भक्ति-श्रद्धा से भगवान् खुश न होते तो और कौन होता ?" कण्णकि अपना आपा भूल गयी । थोड़ी देर के लिए उसे इस लोक का ध्यान ही नहीं रहा ।

इसी समय एक अहीरिन वहाँ पर आयी । मादरी ने उससे कहा, "अरी, तुमने तो बड़ी देर कर दी ।"

"क्या करूँ ? सबेरे-सबेरे मदुरापुरी चली गयी थी । मुझे तो 'कुरवै कुत्तु' का पता ही नहीं था । पहले से मुझे पता होता तो मदुरै नहीं जाती । घर आने पर मालूम हुआ तो सीधे यहाँ आ रही हूँ ।" उसने उत्तर दिया ।

"मदुरापुरी का कोई समाचार है क्या ?" किसी ने पूछा ।

आने वाली ने कण्णकि की ओर देखा और कहा, "एक बुरा समाचार है ।"

"क्या है ? बताओ न !"

"कल शाम को चोल देश का एक आदमी व्यापार हेतु मदुरा नगरी पहुँचा ।"

कण्णकि के कान खुल गये । "मेरे पति भी तो उसी के वास्ते गये हैं और वे भी कल ही शाम को गये हैं ।"

"वह आदमी कुछ जेवर बेचने सुनार टोली में गया और वहाँ पता चला कि वे चोरी के माल हैं ।"

"मेरे पति तो सिर्फ एक नूपुर बेचने गये हैं ।" कण्णकि कुछ आश्वस्त हुई ।

"चोरी के माल में क्या-क्या था, इसका कुछ पता चला ?" किसी ने पूछा ।

"ठीक-ठीक पता नहीं । पर महारानी का एक नूपुर उसमें जरूर था ।"

"नूपुर ?" कण्णकि के पैरों तले से भूमि खिसकने लगी ।

"चोरी करने वाला एक नूपुर नहीं चुराता । चुराता तो नूपुरों का जोड़ा ही चुराता ।" मादरी ने कहा ।

"लेकिन मैंने जो सुना, सो बताया । लोगों की जबान पर एक ही नूपुर था ।" उसकी दृष्टि कण्णकि के पैरों पर गयी ।

"चोर का क्या हुआ ?"

"उसे राजदण्ड मिला है ।"

बस, कण्णकि गश खा कर गिर पड़ी ।

मादरी उसके मुख पर जल छिड़क कर होश में लायी ।

कण्णकि दुख का पहाड़ ढोती हुई बोली, "मेरे पति को तुम लोग चोर समझती हो ?"

"नहीं, कभी नहीं ! वे तो बड़े धर्मात्मा पुरुष हैं ।" सभी अहीरिनों का यह निर्णय था ।

फिर भी कण्णकि से नहीं रहा गया । दोनों हाथों से सिर पकड़ती हुई अपने निवास पर पहुँची और बिलखने लगी, "हाय प्यारे ! मैं तो साथ चलने को प्रस्तुत थी । पर आपने मना कर दिया । अब क्या होगा ? मैं आपको कहाँ-कहाँ ढूँढूँगी । मेरा मन कहता है, राजा ने न्याय के नाम पर अन्याय कर दिया है । मैं आपको छोड़ कर यहाँ अकेली नहीं रह सकती । माफ कीजिये, यही पहली और अन्तिम बार है कि आपकी अनुमति लिये बिना आप से मिलने निकल रही हूँ । आपके दर्शन करने के बाद ही मेरे जी में जी आयेगा । खाना-पीना तब तक मेरे लिये हराम है, जब तक आपको जिन्दा नहीं देख पाती ।"

मादरी दौड़ी-दौड़ी आयी और भरसक समझाया । पर किसी भी बात से कण्णकि को तसल्ली नहीं मिली । बोली, "माँ ! मुझे माफ कर दो । मुझे ऐसा लगता है, आज यहाँ जितने भी अपशकुन हुए हैं, वे मेरे ही कारण हुए हैं । मुझ अभागिन को तुमने शरण दी और दुख-दर्द मोल लिया । मुझे अनुमति दो, मैं उनकी खोज में जा रही हूँ । वे भले चंगे मिल जाएँ तो मैं जरूर उनके साथ यहाँ लौटूँगी । नहीं तो वे जहाँ हैं, वहीं को चली जाऊँगी ।"

कहते-कहते उसने दूसरा नूपुर उतारा और हाथ में लिया । फिर मादरी की ओर मुड़ कर पूछा, "मादरी माँ ! राजदण्ड क्या होता है ?"

मादरी के मुख से कोई उत्तर नहीं निकला, वरन् उसी प्रश्न की प्रतिध्वनि उठी, "राजदण्ड क्या होता है ?"

उस वक्त दोपहर का सूरज सिर पर आ गया था । चढ़ती धूप ने उग्र रूप धारण कर लिया था ।

कण्णकि वहाँ से नंगे पैर, नंगे सिर चल पड़ी । उसे धूप की परवाह नहीं थी । उसकी उग्रता के सामने धूप की उग्रता कुछ नहीं थी ।

कण्णकि आँखों में आग लेकर मदुरा की ओर ऐसे चली, मानो दुर्गा माता या काली मैया हो ।

(१६)

महाराज नेडुंचेलियन पैर पटक कर चले गये तो महारानी कोप्पेरुन्देवी का मान जाग उठा । "मैंने कौन-सी गलती की कि उन्हें मनाने जाऊँ । अपने दिल की बात मैंने उनके सामने खोल कर रखी, कोई लुका-छिपी नहीं की । मेरी बातों में गलती देखी होती तो उन्हें चाहिए था कि मुझे समझाते । वे समझा नहीं पाये, पैर पटक कर चले गये तो इसका क्या मतलब है ? यही न कि उनके ही दिल में चोर छिपा था । गरज पड़े तो वे आप ही आयें, मैं क्यों जाऊँ ? इस बार मैं उन्हें दिखा दूँगी कि देह से कोमल होने पर भी हम नारियाँ दिल से कमजोर नहीं होतीं ।"

ऐसे विचारों में रात कट गयी और भोर हुआ । पर महाराज नहीं आये । उनके बदले, महारानी का खोया हुआ नूपुर आ गया । सोचने लगी, "एक रात के अन्दर-अन्दर यह कैसे सम्भव हुआ ? मैंने पते की बात कही और ठीक जगह पर चोट की । नहीं तो यह नूपुर इतनी जल्दी कैसे मेरे हाथ आता ? निःस्सन्देह, इसमें महाराज का हाथ है और वंचि उनका सहायक रहा है । हाँ, अब वे मेरे सम्मुख कैसे मुँह दिखा सकेंगे ? उफ्, कितनी आसानी से ये पुरुष नारी की बुद्धि को दोषी देते हैं । वे आयें तो खूब आड़े हाथों लेना चाहिए । पर आयें, तब न ?"

कोप्पेरुन्देवी की जिज्ञासा बढ़ी तो उसने अपनी एक दासी को बुला कर पूछा, "तुम्हें मालूम है, मेरा यह खोया नूपुर कैसे मिला ?"

"हाँ, क्यों नहीं ? वंचि सुनार के घर में चोर मिल गया ।" दासी ने कहा ।

"मेरा कहना सच निकला । आखिर वंचि ही चोर निकला न ?" महारानी ने पूछा ।

"कौन कहता है कि वंचि चोर है ? वंचि ने चोर को पकड़ लिया ।"

"वह चोर हमारे महाराज ही थे न ?"

"महारानी ! बुरा न मानिये, आज न जाने, आपके मुँह से कैसी-कैसी अनूठी बातें निकल रही हैं । नूपुर मिल जाने की खुशी में आप अपने होश-हवास खो बैठी मालूम देती हैं ।"

"अच्छा, अच्छा बात क्या है, बोलो ।"

"कल रात को एक अजनबी वह नूपुर बेचने के लिए वंचि सुनार के घर आया था । वंचि सुनार ने उसे बातों में फँसा कर महाराज के कानों तक यह खबर पहुँचा दी । महाराज ने नगर-रक्षक भेज कर चोरी का नूपुर बरामद किया है ।"

महारानी उसके आगे कुछ सुन नहीं सकीं । महाराज के न आने का कारण अब मालूम हो गया । "हाँ, कोई मानी पुरुष मुझ जैसी हठी स्त्री के सामने आये तो कैसे ? कल रात को मैंने क्या अनाप-शनाप बक दिया । वंचि और राजा को दोषी ठहरा दिया । ठीक ही कहा है, 'स्त्री-बुद्धि प्रलयंकरी' । मेरी बात मान कर महाराज ने वंचि के घर की तलाशी करवायी होती तो कैसा परिणाम निकला होता । लोग उन्हें निष्ठुर कहते, क्रूर कहते । न जाने, मेरे पतिदेव जैसे नीति परायण व्यक्ति को कैसी-कैसी उपाधियाँ मिलतीं और बातें सुननी पड़तीं । नीति का पालन ऐसा होना चाहिए, जिससे दोषी का भी दिल न दुखे । महाराज उसमें माहिर हैं । अब मैं क्या करूँ ? कैसे उन्हें अपना मुँह दिखाऊँ ? मैं जो मान कर बैठी हूँ, वह बेमानी है ।"

विचारों के गुत्थम-गुत्थी में तीसरा पहर बीत गया । महाराज ने आने का नाम नहीं लिया तो महारानी को ही अपना मान छोड़ना पड़ा ।

महाराज का मुँह एकदम विवर्ण हो गया था । नेत्र सूज गये थे । पश्चात्ताप की आग में ऐसे झुलस रहे थे कि अन्तर की वेदना बाहर भी प्रकट हो रही थी ।

महारानी ने उनकी इस सूरत को देखा तो बुत की तरह खड़ी हो गयी । "ये भी कैसे पुरुष हैं कि एक रात का वियोग तक नहीं सह सके ।" महारानी के मन में यह विचार आया तो पूछा, "आपने यह कैसी सूरत बना रखी है ?"

"महारानी ! मेरी बुद्धि मारी गयी । मैंने बड़ा अन्याय कर दिया ।"

"आपकी नहीं, मेरी बुद्धि मारी गयी कि आपके दिल को दुखा दिया ।"

"अपने नूपुर की आसक्ति के कारण, तुमने जो कहा, सो बुरा नहीं कहा। पर आवेश में आ कर मैंने एक बड़ा अनर्थ कर दिया।"

"हूँ...... !"

"चोर को राजदण्ड दे दिया।"

"नियम ही का तो पालन किया आपने।"

"खाक किया ! चोर को पकड़ कर पूरी तहकीकात करने के बाद ही तो उचित दण्ड देना चाहिए ?"

"हाँ !"

"मैंने वैसा कहाँ किया ? रंगे हाथों चोर पकड़ा गया तो वहीं मौत के घाट उतारने का आदेश भी मैंने दे दिया।"

"मुझे तो इसमें कोई अन्याय नहीं दीखता।"

"जो पकड़ा गया, वह, मान लो कि चोर नहीं है....... ।"

"सो कैसे ? उसके हाथ से तो चोरी का माल निकला न ?"

"हाँ, पर वही चोर है, यह कैसे कहा जा सकता है। चोरी करने वाला कोई दूसरा हो तो........ ?"

पर एक बात ध्यान देने की है। बड़े-बुजुर्गों ने इस विषय में कहा है कि "अन्तःकरण प्रमाण है।"

"बड़े-बुजुर्गों का इस विषय में तो कहना ठीक है। पर......"

"आप जैसे नीति परायण व्यक्तियों पर भी वह लागू हो सकता है।"

"अच्छा, वैसा मान लें तो, फिर मेरे मन में सन्देह को सिर उठाना नहीं चाहिए। अब तो मेरा ही दिल मुझे मार रहा है। मैं कैसे मानूँ कि मैंने न्याय ही किया है ?"

महारानी कोप्पेरुन्देवी निरुत्तर हो गयीं। महाराज के जलते दिल पर वह मरहम पट्टी नहीं लगा सकीं। सोचने लगीं— "महाराज की बात सच निकली और चोर निरपराध निकला तो क्या होगा ? पांडिय वंश की प्रतिष्ठा पर आ बनेगी न ?" वह आगे सोच नहीं सकीं। उनके हृदय में भी आग की एंक चिनगारी पड़ गयी थी।

"देवी ! हमारा वंश नीति-परायणता, कर्त्तव्य-निष्ठा और सुशासन के लिये जगत्प्रसिद्ध है । उसमें बट्टा लग गया तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा, किसी को मुँह नहीं दिखा सकूँगा । उसके पहले भगवान् मुझे उठा ले……"

"मुझे नहीं, हमें कहिये । आपके बाद मैं जीवित रहूँगी, ऐसा आप समझते हैं तो गलत समझते हैं । बिना पानी के मछली जैसे नहीं जीती, वैसे ही मैं भी न जिऊँगी । मेरी भी यही प्रार्थना होगी कि भूमि फट जाए और मैं उसमें समा जाऊँ ।" कोप्पेरुन्देवी ने कहा ।

"न जाने, भगवान् को क्या मंजूर है ?" नेडुंचेलियन ने निःश्वास छोड़ा ।

इसी समय द्वारपाल ने आकर कहा, "महाराज ! एक औरत आयी है और आप से भेंट करना चाहती है ।"

"क्या बात है ?" महाराज ने पूछा ।

"मालूम नहीं ! पर बेचारी दुख की मारी लगती है ।"

"कौन-सा दुख है उसे ?"

"पूछा मैंने । पर बताती नहीं है । एक ही बात दुहराती है कि मुझे अभी महाराज से भेंट करनी है । उसके हाथ में एक नूपुर है ।"

"नूपुर ?" महारानी और महाराज दोनों के मुख से एक साथ निकला ।

"हाँ !"

"अन्दर भेज दो उसे ।" महाराज का आदेश मानो कुएँ से गूँज उठा ।

"अब क्या होगा ?" महाराज का सिर चकराया ।

"आप तो मर्द हैं, राजा हैं । दिल को मजबूत रख कर उसकी फरियाद सुननी चाहिए । जो न्याय करना हो, करना चाहिए ।" महारानी ने दिलासा दी ।

पर महाराज का दिल डूबा जा रहा था । महारानी ने आह भरी ।

"अब क्या होगा ?"

कड़ी धूप में कण्णकि अहीरों की बस्ती से चली तभी उसके मन के विचारों ने मोड़ खाया । ठंडे दिल से सोचने लगी तो उसे लगा कि मेरे पति के साथ ऐसा कोई अन्याय नहीं हुआ होगा । निर्दोष व्यक्ति के साथ पांडिय राजा निर्दयता से पेश नहीं आये होंगे । सुना है, उनका वंश ही न्याय के आधार पर खड़ा है । कौंती माई ने रास्ते में पोर के पांडियन (स्वर्ण हस्त पांडिय) की जो कहानी सुनाई थी, वह तो दिल को छूने वाली थी । उनके असली नाम को दबा कर यह नाम लोगों की जबान पर ठहर गया । वह इसीलिये न, कि उन्होंने न्याय की तुला हाथ में ली थी ।

वे एक रात को नगर की हालत से परिचित होने के लिए भेष बदलकर निकले तो ब्राह्मणों की एक बस्ती रास्ते में पड़ी । एक घर के सामने जा खड़े हुए । अन्दर से बातों की भनक सुनायी दी । कान दे कर सुनने लगे ।

ब्राह्मण का क्या नाम बताया था माई ने ? हाँ, कीरन्दै । वह अपनी पत्नी से कह रहा था, "डर की क्या बात है ? पांडिय राजा का सुशासन चल रहा है । कोई बुरा नहीं सोच सकता, बुरा नहीं देख सकता है । मैं यात्रा पूरी कर जल्दी ही लौटूँगा ।"

पत्नी का आक्षेप तो इतना ही था, "वह सब तो ठीक है । पांडिय के राज्य में रहते हुए मुझे किसी बात का डर नहीं है । अकेली ही रह सकती हूँ । पर बात यह है कि आपका वियोग कैसे सह सकती हूँ ?"

"मिलन का स्वाद तो वियोग में है ।" कीरन्दै ने अपनी पत्नी को मना लिया और दूसरे ही दिन यात्रा पर जाने की बात तय हो गयी ।

फिर क्या ? दूसरे दिन से राजा के कार्यों में एक और काम बढ़ गया । रोज़ रात को उस गली से गुजरते और उस घर की निगरानी ऐसी करते कि किसी को पता ही नहीं चलता ।

एक दिन आधी रात को वहाँ गये तो क्या देखते हैं कि कीरन्दै के घर के अन्दर से एक धीमा पुरुष-स्वर आ रहा है । राजा ने सोचा कि हम ठगा गये । फौरन द्वार पर दस्तक दी ।

अन्दर से कीरन्दै की ऊँची आवाज आयी, "कौन है ?"

राजा को अपनी गलती का पता लगा । कीरन्दै अपनी ब्राह्मणी के चरित्र पर सन्देह करने लगे तो क्या हो ? ब्राह्मणी को नरंक-यातना भोगनी पड़ेगी । सम्भव है, अपनी बदनामी के डर से वह आत्म-हत्या भी कर ले । उसका सारा दोष किसके सिर मढ़ेगा ? मेरे ही सिर पर पाप का बोझा आयेगा न ? इस विचार के उठते ही राजा ने फुर्ती से एक काम किया । उस बस्ती में जितने घर थे, सबके द्वार पर वैसी ही दस्तक दी, जैसी कीरन्दै के द्वार पर दी थी और अपने महल में चला गया ।

दूसरे दिन सबेरे बस्ती के सभी ब्राह्मण चोर-भय की शिकायत लेकर दरबार में पहुँचे । "यह हमने क्या किया ? अपनी प्रजा को डरा दिया । हमें तो चाहिए यह था कि अपनी प्रजा को डर और वहम से दूर रखें और उन्हें सुखी बनाये रखें ।" इस नतीजे पर पहुँच कर राजा ने कहा, "हम अभी उस चोर को उचित दण्ड दिये देते हैं ।" और तलवार निकाल कर अपना दाहिना हाथ, जिसने द्वारों पर दस्तक दी थी, काट डाला ।

उपस्थित लोगों के मुख से चीख निकल पड़ी, "महाराज ! आपने यह क्या कर डाला ?"

"बात यह है कि........" राजा ने सारी स्थिति समझायी तो लोग रो पड़े और बोले, "न्याय को उचित आसन देने के लिए आपको अपने एक हाथ से हाथ धोना पड़ा, यह विधि की विडम्बना नहीं तो और क्या ?"

"सिंहासन पर अंगहीन राजा नहीं बैठ सका ।" इस विचार से राजा गद्दी छोड़ने को प्रस्तुत हो गया । प्रजा ने ऐसी जोर-जबरदस्ती की कि वह सिंहासन नहीं छोड़ सका, उस पर बैठने के लिए 'स्वर्ण हस्त' धारण कर लिया ।

पोर के पांडियन वंशज हो कर, क्या नेडुंचेलियन न्याय के मार्ग से डिग जाएँगे ? नहीं, कभी नहीं ।

कण्णकि जब इस निर्णय पर पहुँची, तब सोनार गली में थी । वंचि सोनार के द्वार पर भीड़ देखी तो सीधे वहाँ पहुँची । जा कर क्या देखती है कि अनहोनी हो कर रही । उसके मुख से आकाश-पाताल को दहला देने वाली एक चीख निकली और मूर्च्छित हो कर कोवलन् की मृत-देह पर गिर पड़ी ।

बड़ी देर बाद होश में आयी तो धाड़ें मारकर रोने और बिलखने लगी—"ऐ मेरे देवता ! इन लोगों ने आपकी क्या गति कर डाली ? पांडियों के

राज्य में 'न्याय' नाम की कोई चीज नहीं है क्या ? आसमान इनके सिर पर फट कर क्यों नहीं गिर पड़ा ? हवा ने इनका दम क्यों नहीं घोंट दिया ? अग्निदेव ने आग की वर्षा क्यों नहीं की ? 'वैके' नदी ने इनके ऊपर क्यों प्रलय नहीं ढहायी ? ऐ मेरे प्यारे ! मुझे अकेली छोड़ कर आपको जाने का मन कैसे हुआ ? इस मदुरा की हवा आप पर भी लग गयी क्या ? इस अपराध के पीछे किसका हाथ है ? कहिये न ! मुँह खोल कर कहिये न ?"

कोवलन् की मृतदेह को पकड़ कर कण्णकि झकझोरने लगी ।

"मुझे न मारो, मुझे छोड़ दो ! मैं चोर नहीं, सच मानो, मैं चोर नहीं । चोर तो बाहर पड़ा है । मुझे छोड़ दो । मुझे न मारो ।"

अन्दर से वंचि सुनार हाँफते-हाँफते बाहर आया । उसके पीछे कोई नहीं था । कोवलन् की मृतदेह देखी तो जान ले कर वह ऐसा भागा कि कोई उसे जान से मार डालने को बढ़ रहा है ।

वंचि का दिमाग फिर गया था । "मैं चोर नहीं, मैं चोर नहीं ।" कहता हुआ वह आँखों से ओझल हो गया । वातावरण में उसके वाक्य प्रतिध्वनित हो उठे—

"मैं चोर नहीं, मैं चोर नहीं ।"

कण्णकि ने कोवलन् की ओर ऐसे देखा, मानो उसी के मुँह से वह बात सुन रही हो । फिर धीरे से उठते हुए बोली, "मैं अभी पांडिय राजा के दरबार में जाऊँगी और यह साबित कर लौटूँगी कि मेरे पति निर्दोष हैं ।"

कण्णकि तेज कदमों वहाँ से चल पड़ी ।

(१८)

"अब क्या होगा ?"

महाराज नेडुंचेलियन इस प्रश्न से मुक्त नहीं हो पाये थे । उन्हें वह खाये जा रहा था ।

कण्णकि अन्दर प्रविष्ट हुई तो उन्होंने एक बार आँख उठा कर देखा । कण्णकि का चेहरा तमतमाया हुआ था । नेत्र इतने लाल थे, मानो सुलगते

अंगारें हों । अगले क्षण उनकी आँखें झुक गयीं । "कहीं यह रणचंडी तो नहीं है ?"

"देवी ! तुम कौन हो ?" महाराज इतना ही पूछ सके ।

"मैं कौन हूँ, क्या बताऊँ ? मैं आ रही हूँ उस देश से, जहाँ मनु नीति चोलन के सुशासन का अब भी बोलबाला है ।" कण्णकि बड़ी ही नरमी से बोली । हाँ, वह तो अपनी फरियाद सुनाने आयी थी ।

"मैंने सुना है, मनु नीति चोलन ने एक गाय का दुखड़ा पोंछने के लिए अपने एकमात्र पुत्र को रथ के पहियों के नीचे लिटा दिया था । सच पूछो तो उसमें राजकुमार का कोई दोष नहीं था । वह तिरुवारूर की वीथियों में अपना रथ हाँके जा रहा था । माँ का दूध पीकर बछड़ा इतना खुश हुआ कि आवागमन के मार्ग ही में कूद-फाँद मचाने लगा । उसे रथ का ध्यान नहीं रहा । पहिये के चक्कर में आ गया और वहीं दम तोड़ दी ।"

"पर महाराज की धारणा यह थी कि अनजाने ही में सही, किसी निरीह प्राणी को कष्ट नहीं होना चाहिए । माँ की ममता देखिये, गाय रंभाती हुई महाराज के महल में दौड़ गयी और बाहर न्याय का जो घंटा बंधा था, उसकी रस्सी अपने मुँह से पकड़ कर खींच दी । महाराज फरियाद सुनने बाहर आये तो देखा कि एक गाय आँसू बहाती खड़ी है । पूछ-ताछ कर गाय का दुख मालूम किया और अपने पुत्र को दोषी ठहराया । उनके विचार में राजा को सब तरह से सावधानी बरतनी चाहिए । कर्मचारियों में राजकुमार पर रथ का पहिया चढ़ाने को कोई तैयार नहीं हुआ तो मनु नीति चोलन स्वयं रथ पर बैठ गये । ममता छोड़ कर अपने पुत्र पर रथ के पहिये फेर दिये । न्याय हो तो ऐसा हो ।"

"मानता हूँ । न्याय-विचार में हमारे पांडिय वंश का भी अपना महत्व है ।"

"महत्व है ? इसीलिये कल एक निरपराध मारा गया ?"

"तुम्हारा क्या मतलब है ? मैं समझा नहीं !"

"समझ हो तो समझेंगे । पर अधिकार के अन्धे क्या समझेंगे ?"

"बहन, इस तरह जबान लड़ाना तुम्हें शोभा नहीं देता । बात क्या है ? बताओ तो समझूँ ।"

"बात यह है कि कल रात को जो आदमी चोरी के अपराध में पकड़ा गया, नहीं, नहीं, मारा गया, वह मेरा पति है । हम चोल देश के कावेरी पूम्पट्टिनम् के निवासी हैं । वणिक कुल के हैं । मेरे पिता का नाम महानायकन है और उनके पिता का, महासत्व । व्यापार में घाटा पड़ जाने से हम मदुरा नगरी को चल पड़े । मेरे नूपुरों में से एक को बेचकर व्यापार चलाने का विचार था । आपके राज्य में आने पर आधारभूत पूँजी ही डूब गयी । अब कौन व्यापार चलाये और कैसे चलाये ?"

"माई, तुम्हें बातें बनाना खूब आता है, दाद देता हूँ, तुम्हारी इस कला की । पर तुम्हारा पति तो रंगे हाथों पकड़ा गया ।"

"तो यह कहिये कि आपने उन्हें चोरी करते हुए पकड़ा है ।"

"ऐसा नहीं ! जब वह पकड़ा गया तो चोरी का माल उसके हाथ में था ।"

"उनके हाथ में नूपुर देख कर आपने उन्हें नूपुर-चोर ठहरा दिया और तलवार के घाट उतरवा दिया । यही न ।"

"हाँ, नहीं, यह भी नहीं, मैंने नहीं देखा, मेरे आदमियों ने देखा ।"

"तो यह कहिये कि आपको अपने आदमियों पर पूरा विश्वास है !"

"विश्वास पर ही तो दुनिया का कारोबार चलता है । मेरे आदमियों ने जब देखा कि महारानी का नूपुर उसके हाथ में है तो हमारे यहाँ प्रचलित दण्डविधान के अनुसार उसे दण्ड दिया गया है ।"

"क्या मैं यह पूछ सकती हूँ कि मेरे पति के हाथ में जो नूपुर था, उसकी जाँच-पड़ताल हुई और यह साबित हुआ कि वह नूपुर आप ही का है यानी महारानी का है ?"

"जाँच-पड़ताल के बिना, मेरे आदमी ऐसा कदम नहीं उठाते ।"

"घुमा-फिरा कर न बोलिये । कहिये कि आपने जाँच करवायी है कि नहीं ?"

"महाराज निरुत्तर हो गये । पर एक नारी के सामने हार कैसे मानें ?"

बोले, "बस, बस ! बको मत ।"

"आपका क्रोध मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता ! मैं जो कहती हूँ, वह सोलहों आने सच हैं ।"

"तो तुम साबित कर सकती हो कि तुम्हारे पति के हाथ में जो नूपुर था, वह तुम्हारा है ?"

"जरूर !" कण्णकि ने दृढ़ स्वर में कहा ।

महाराज ने कोप्पेरुन्देवी की ओर मुड़ कर कहा, "देवी, वे दोनों नूपुर इसे दे दो ।"

महारानी ने नूपुर उतार कर कण्णकि के हाथ में दिये ।

महाराज ने सगर्व कहा, "इन दोनों में से अपना चुन लो तो मानूँ ।"

उनका विचार था कि देखने में दोनों नूपुर एक समान हैं । इनमें फरक निकालना बड़े-बड़े कला के पारखियों के लिये भी सम्भव नहीं है । कण्णकि अपनी हार मान जाएगी ।

कण्णकि ने दोनों नूपुरों को कानों के पास ले जा कर हिलाया और उनमें से निकलती आवाज को गौर से सुना और बोली, "यही नूपुर मेरा है ।"

"हम कैसे मानें ?"

"मैं भूलती नहीं हूँ तो महारानी के नूपुरों में मोती भरे हैं ।"

"हाँ, हाँ, मोती ही भरे हैं । तुम्हारे नूपुरों में......?"

"माणिक ।"

"माणिक ?"

"हाँ, आपको शक होता है ? तो देखिये....... "

कण्णकि ने अपना नूपुर जोर दे कर भूमि पर पटका तो वह फूट गया । उसके अन्दर से माणिक बिखरने लगे ।

"महाराज ! अपनी आँखे अच्छी तरह से खोल कर देखिये । इसमें से माणिक निकले हैं या मोती ?"

महाराज नेडुंचेलियन की आँखें अपमान से झुक गयीं । उनकी जबान से बोल न फूटे । भर्राये हुए स्वर में बोले, "देवी ! मैंने वंचि सुनार की बातों में आ कर बड़ा अन्याय कर डाला । तुम्हारे पति की जान ले ली । तुम्हारे सुहाग की चूड़ियाँ फोड़ डालीं, तिलक मिटा दिये । मुझ जैसा पापी, नराधम इस संसार में कोई नहीं होगा । मैं कुलांगार निकला । पांडिय वंश

की सारी संचित प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी । मैं किसे मुँह दिखाऊँ, कैसे दिखाऊँ ? मृत्यु मुझे अभी अपनी चपेट में ले ले तो कितना अच्छा हो । देवी, माफ कर दो मुझे ! तुम माफ करोगी तो भी मेरा कलंक नहीं मिटने का । ऐ पापी प्राण ! अब भी तुम्हें इस शरीर का मोह है ? इसे तज कर चले क्यों नहीं जाते ?"

महाराज नेड्डुंचेलियन को अपना आसन खलने लगा । उठे तो आँखों के सामने अंधियारा छा गया और पैर लड़खड़ा गये । धड़ाम से औंधे मुँह गिरे तो कण्णकि के पैरों में थे । देखते-देखते उनकी साँसें फूलने लगीं, रक्त की धमनियाँ तनने लगीं और आँखें पथराने लगीं ।

"ओह !"

महारानी कोप्पेरुन्देवी के मुख से आह निकली । उस आह के साथ प्राण भी निकल जायेंगे, इसका किसे पता था ?

पर कालदेव हँस रहा था ।

"उफ् ! यह कैसा गजब हो गया ?"

कण्णकि ने पति-पत्नी की लाशें देखीं तो मन में कहने लगी, "वह पतिव्रता नारी कितनी भाग्यवती है, जो अपने पति के संग प्राण छोड़ देती है ?"

उसे अपने आप पर क्रोध हो आया तो पैर पटकती हुई बाहर निकली ।

उसका हृदय जल रहा था । मदुरा की वीथियों में घूमने लगी तो उसे अन्धेरा ही अन्धेरा नज़र आया । उसका निर्दोष पति चोर ठहराया गया, मौत के घाट उतारा गया, जिससे उसके सुहाग की चूड़ियाँ टूटीं, सिन्दूरी तिलक पुँछ गया । पर कोप्पेरुन्देवी······ ? नित्य सुहागिन बन कर अपने पति के संग प्रस्थान कर गयीं । उसके जलते हृदय में प्रतिशोध की आग सुलग उठी । क्रोध उसका ईंधन बना । वह पागल-सी हो गयी । आग्नेय नेत्र ले कर वह मदुरा की हर गली में गयी और चीख कर कहने लगी, "मैं अपने पातिव्रत्य की शपथ खा कर कहती हूँ, भगवान् का कहर इस नगरी में आग बन कर उतरेगा । अग्निदेव इस नगरी को जला कर ही छोड़ेगा । पर मेरी प्रार्थना यह है कि भलों का भला हो, बुरों का बुरा हो ।"

सुनने वालों का हृदय दहल गया और वे आपस में कहने लगे, "राजा ने बड़ा अन्धेर कर दिया । देखो, ये तो दुर्गा माता मालूम होती हैं । इनके मुख से जो शब्द निकल रहे हैं, वे सत्य वचन हैं । न जाने, भगवान की क्या इच्छा है !"

कण्णकि ने बिना आहार के मदुरा नगरी का चप्पा-चप्पा नाप डाला । थक कर एक पेड़ के नीचे बैठी तो उसकी आँखें जरा देर के लिये मुँद गयीं ।

"आग लग गयी ! आग लग गयी !" लोगों की चीत्कार सुनाई दी ।

"अरे ! मेरे कहने से आग लग गयी !"

कण्णकि ठठा कर हँस पड़ी, त्रिपुरारि की तरह ।

"हा, हा, हा ।"

उसी की हँसी ने उसकी आँखें खोल दीं । देखा तो सचमुच मदुरा नगरी जल रही थी ।

"अरे, यह कैसा अनर्थ कर डाला मैंने ? बाल-बच्चों का क्या होगा ? बूढ़े-बीमारों का क्या होगा ? गया-बछड़ों का क्या होगा ? निरीह नारियों का क्या होगा ?"

कण्णकि का सिर चकराने लगा । पश्चात्ताप में बहे आँसुओं ने उसके हृदय में जल रही क्रोधाग्नि को बुझा दिया तो उसने ऊँचे स्वर में दुर्गामाता को सम्बोधित कर कहा, "माँ, मेरे पातिव्रत्य में आग बरसाने की शक्ति है तो उसमें यह भी शक्ति होनी चाहिए कि पानी की भी वर्षा करे । सती सावित्री और साध्वी नलायनी की तरह मेरा पातिव्रत्य सच्चा हो तो इस भूमि पर अभी पानी की वर्षा हो और तप्त हृदय और भूमि शीतल हो जाए ।"

जनसामान्य ने यह सुना और देखा कि सचमुच बादल उमड़-घुमड़ कर आ रहे हैं ।

फिर पानी की ऐसी वर्षा हुई कि संतप्त भूमि शीतल हो गयी ।

पति में देवता को देखने वाली कण्णकि का हृदय शान्त हुआ और उसने अपनी आँखों मदुरा नगरी का पुनर्निर्माण होते देखा तो संतृप्त मन ले कर चेर राज्य की ओर चल पड़ी ।

इच्छा मात्र से अग्नि और पानी की वर्षा कराने की क्षमता रखने वाली कण्णकि में लोगों ने दैवी शक्ति देखी तो पातिव्रत्य का अवतार माना । तब से तमिल भूमि में कण्णकि 'पत्नी दैवम्' के रूप में पूजी जाती है ।

तमिल वेद तिरुक्कुरल ने सच ही कहा है, "वह नारी, जो देवताओं की पूजा नहीं करती, बल्कि पति की पूजा करती है और पति में भगवान् के दर्शन करती है, वह परम पूज्य है । उसके आदेश पर मेघ भी पानी बरसाते हैं ।"

*

विश्वविद्यालय प्रकाशन